क्या वेदों में मांस भक्षण का विधान है ?

सरिता के अनर्गल प्रलाप
का मुंह तोड़ उत्तर

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध अन्वेषक
श्री शिवपूजन सिंह (कुशवाहा)
एम० ए०
द्वारा प्रस्तुत है

इस आशा और विश्वास के साथ कि
आर्य जन भारी संख्या में इसे
मंगा कर वितरित करेंगे

मूल्य बढ़िया सफेद कागज पर—५०) सैकड़ा

क्या वेदादि ग्रन्थों में मांस-भक्षण, गोवध, नरमेध आदि की चर्चा है ?

कुख्यात मासिक पत्रिका 'सरिता' दिल्ली, फरवरी (द्वितीय) १९७३ ई० पृष्ठ ५१ से ६० तक में श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' का "रक्त सने पृष्ठ" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें लेखक ने ऋग्वेद में नरबलि, इन्द्र पर बैल खाने का दोष, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के लेख पर आक्षेप, यजुर्वेद में नरबलि प्रथा, अथर्ववेद में मांस भक्षण, शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त, उपनिषद्, गृह्यसूत्र, रामायण, महाभारत आदि में मांस भक्षण की चर्चा की है। इस प्रकार के कई लेख पहले भी 'सरिता' में प्रकाशित हो चुके हैं जिनका उत्तर आर्यसमाज की ओर से दिया जा चुका है। आज तक उनका प्रत्युत्तर 'सरिता' में प्रकाशित नहीं हुआ। पुनः-पुनः उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति करना साधारण जनता को पथ-भ्रष्ट करना है। इस लेख में लेखक के लेख पर ऊहापोह से विचार किया जाता है। लेखक और 'सरिता' के सम्पादक को मेरी खुली चुनौती है कि यदि उनकी लेखनी में शक्ति हो तो मेरे लेख का प्रत्युत्तर प्रकाशित करें।

पृष्ठ ५१ "......ऋग्वेद (१-२४-१२ से १५) में 'शुनःशेप' नामक पुरुष का वर्णन है, जिसे नरमेध-यज्ञ में बलि चढ़ाने की तैयारी है......। ऋग्वेद के व्याख्यान रूप 'ऐतरेय ब्राह्मण' में यह कथा इस ढंग से चित्रित की गई है कि कई नए तथ्य अवगत होते हैं।......"

समीक्षा—श्री सायण, डा० राजेन्द्रलाल मित्र व श्री रमेशचन्द्र दत्त प्रभृति के लेख व टिप्पणियों को पढ़कर साधारण वेदानभिज्ञ लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि वास्तव में ऋग्वेद में 'नरबलि की प्रथा' की चर्चा है। वेदों में किसी व्यक्ति विशेष व अनित्य इतिहास का वर्णन नहीं है। वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं। अतः 'शुनःशेप' का कुछ और ही तात्पर्य है जिसको लौकिक संस्कृत से अर्थ करने वाले नहीं समझ सकते हैं। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य इस सूक्त पर है जो निरुक्त निघण्टु के अनुसार सत्य है।

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।
शुनःशेपोयमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥"

(ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २४ मंत्र १२)

महर्षि दयानन्द जी का भाष्यः "(तत्) वेदबोधसहितं विज्ञानम् (इत्) एव (नक्तम्) रात्रौ (तत्) शास्त्रबोधमुक्तम् (दिवा) दिवसे (मह्यम्) विद्याधनमिच्छवे (आहुः) कथयंति (तत्) गुणदोषविवेचकः। अत्र सुपांसु० इति

विभक्तेर्लुक् ।(अयं) प्रत्यक्षः (केतः)प्रज्ञाविशेषो बोधः । केत इति प्रज्ञानामसु पठितम् । निघं० ३।४। (हृदः) मनसा महात्मनो मध्ये (आ) सर्वतः (वि) विविधार्थे(चष्टे) प्रकाशयति । अत्रांतर्गतो ण्यर्थः (शुनःशेपः) शुनो विज्ञानवत इव शेपो विद्यास्पर्शो यस्य सः । श्वा शुपायी शुवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः । निरु० ३।१८। शेपः शपतेः स्पृशति-कर्मणः । निरु० ३।२१। (यं) परमेश्वरं सूर्यं वा (अह्वत्) आह्वयति । अत्र लडर्थे लुङ् (गृभीतः) गृहीतः । हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वम् । अनेनात्र हस्य भः (सः) पूर्वोक्तो वेदविद्याभ्यासोत्पन्नो बोधः (अस्मान्) पुरुषार्थिनो धार्मिकान् (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) वरः (मुमोक्तु) मोचयति वा । अत्रांत्यपक्षे लडर्थे लोट् बहुलं छन्दसीति शपः श्लुरन्तर्गतो ण्यर्थश्च ॥१२॥

भावार्थ—अत्र श्लेषालंकारः । सर्वैर्मनुष्यैरेवमुपदेष्टव्यं मंतव्यं च विद्वांसो वेदा ईश्वरश्च मह्यं यं बोधमुपदिशंति यं चाहं शुद्धया प्रज्ञया निश्चिनोमि तमेव मया सर्वैर्युष्माभिश्च स्वीकृत्य पापाचरणाद्दूरे स्थातव्यम् ॥१२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (दिवा) दिन जिस ज्ञान का (आहुः) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (मह्यम्) विद्या धन की इच्छा करने वाले मेरे लिए (हृदः) मन के साथ आत्मा के बीच में (केतः) उत्तम बोध (आ वि चष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित होता है (तदित्) उसी वेद बोध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता, कहता और करता हूँ (यम्) जिसको (शुनः शेपः) अत्यन्त ज्ञान वाले विद्या व्यवहार के लिए प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य का (अह्वत्) उपदेश करते हैं जिससे (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर छुड़ावे और उक्त सूर्य भी अच्छे प्रकार जाना और क्रियाकुशलता में युक्त किया हुआ बोध (मह्यम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मुझको प्राप्त होता है (सः) हम लोगों को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य का उपयोग यथावत् किया करें ।

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है । सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिए कि विद्वान्, वेद और ईश्वर हमारे लिए जिस ज्ञान का उपदेश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं वही मुझको और हे मनुष्यो ! तुम सब लोगों को स्वीकार करके पाप और अधर्म करने से दूर रक्खा करे।"[1]

आचार्य पं० वैद्यनाथ जी शास्त्री कृत 'शुनः शेप' का तात्पर्य :—

" 'शुनः शेप' का अर्थ है ज्ञानी अथवा गतिमान् वायु, अग्नि, मित्र, वरुण, जल आदि पदार्थों से सम्पर्क रखने वाला । शेप पद का अर्थ प्रजनन इन्द्रियं है । परन्तु यहाँ पर वह अभिप्रेत नहीं ।……अतः ज्ञानी का सम्पर्क रखने वाला अथवा गति-शील दिव्य पदार्थों के साथ सम्पर्क रखने वाला शुनः शेप है । इस प्रकार शुनःशेप का अर्थ ज्ञानी अथवा वैज्ञानिक है ।

---

१. "ऋग्वेद भाष्यम्" प्रथम भागात्मकम् तृतीयावृत्तिः (अजमेर) पृष्ठ ३२६-३२७

शुनःशेप कोई व्यक्ति विशेष नहीं, इसका एक और भी प्रमाण मिलता है। वह यह कि ऋग्वेद ५।२।७ में "शुनश्चिच्छेपम्" प्रयोग मिलता है। शुनः+चित्+शेपम्—यह प्रकट करता है कि समस्त पद यहाँ पर नहीं प्रयुक्त है। अन्यथा मध्य में चित् कैसे आता। सायण ने व्यत्यय मानकर इसकी संगति लगाई है। स्वामी जी महाराज ने भी "शुनः शेपम्" पद स्वीकार किया है परन्तु वह शुनः+शेपम् को पृथक् रखने पर भी अन्वित होकर बन सकता है। इस मंत्र में शुनः और शेप को अलग-अलग पद मान कर भी ठीक अर्थसंगति लग सकती है। पदपाठ में शुनः शेपम् को एक पद माना गया है। पृथक् असमस्त पद मानकर संगति इस प्रकार लग सकती है :—

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्च।

अर्थात् हे अग्ने ! (विद्वन् अथवा परमेश्वर) अनेक बन्धनों से युक्त शुनः=विद्वान् के गाढ़ शेप=सम्पर्क को हटाइये।"[२]

चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ :—

"ऋ० १।२४।१२ में आये शुनःशेप=सुखार्थी और उत्तम विद्वान्। मंत्र १३ में=शुनः शेप=सुखार्थी मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष।[३]

स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड (ऋ० १।२४।१२ का अर्थ)—

"(तत्-इत्-नक्तं तत्-दिवा) उसी वृत्त को रात्रि में उसी को दिन में (मह्यम् आहुः) मुझे विद्वान् जन बतलाते सुझाते हैं (तत्-अयं हृदः केतः) उसी वृत्त को यह मेरे हृदय का संकेत भी (आ वि चष्टे) घोषित करता है—प्रकाशित करता है कि वरुण परमात्मा बन्धन से छुड़ाने वाला है (यं गृभीतः शुनः शेपः-अह्वत्) जिस वरुण परमात्मा को बन्धन में गृहीत—पकड़ा हुआ इन्द्रिय सुखलोलुप आत्मा रक्षार्थ बन्धन मोचनार्थ पुकारता है उसे वह बन्धन से छुड़ाता है। अतः (सः राजा वरुणः अस्मान् मुमोक्तु) वह सर्वत्र राजमान परमात्मा बन्धन से छोड़ दे, मुक्ति प्रदान करे।*

इन्द्रियों के विषय में लोलुप रहना बुरा है। अवःपतन, महारोगी बनने, अपकीर्तिभागी होने और अनेक दारिद्र्य आदि अनिष्टों का हेतु है। तभी तो कहा है,

---

२. "वैदिक-इतिहास-विमर्श" पृ० ३१२-३१३ (जून १९६१ ई० आर्य साहित्य मंडल लि० अजमेर, प्रथमावृत्ति)

३. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" प्रथमखंड, द्वितीयावृत्ति, पृ० १३०

*"इन्द्रिय सुखलोलुप जीवात्मा की यह शाश्वतिक प्रार्थना है, स्कन्द स्वामी ने भी कहा है "अपि देवस्य नित्यत्वात् तत्कथमात्मा नित्यता कल्पे-कल्पे तस्मादतीते कल्पे यः शुनः शेपः स्वयमाहूतवान् अयमेव वा स." (स्कन्द स्वामी)

"विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम् । उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि ।" विष और विषयों के बीच में भारी अन्तर है । विष तो खाया-पीया हुआ मारता है परन्तु विषय तो स्मरणमात्र से मार देते हैं । इन्द्रियविषयलोलुप जन विषयवासना में पकड़ा हुआ व्यसनबन्धन में जकड़ा हुआ बन्धनमोचन परमात्मा को पूर्ण पश्चात्ताप के साथ पुकारता है कि हे परमात्मन् मुझे इस बन्धन से, इस संकट से मुक्त करो, मैं पुनः इसमें न पड़ूँगा । परमात्मन् ! तू बन्धन मोचक है बन्धन से मुक्त कर देगा । विद्वज्जन कह रहे हैं और मेरे हृदय का भाव-घोष भी यही है, देव ! तू दयालु है मेरी पुकार अवश्य सुनेगा । यह ठीक है तू न्यायशील है जैसा कर्म होगा वैसा फल देगा । परन्तु तू सर्वज्ञ और अन्तर्यामी भी तो है । यह मेरी पुकार दिखावा नहीं अपात्रता या व्यर्थ रोदन नहीं किन्तु भीतरी है, वास्तविक है, पूर्ण पश्चात्ताप के साथ है, अन्तः-स्थल से है । पाप की ओर पग न रखने के निश्चय रूप मानस कर्म के साथ है । अतः मुझे बन्धन से मुक्त करो । मेरा आप उद्धार करो ।[४]

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, ऋग्वेद भाष्यकार : "शुनःशेप= विषयी"[५]

यहाँ पाँचों विद्वान् 'शुनः शेप" का अर्थ ज्ञानी, विद्वान्, सूर्य, विषयी, इन्द्रिय-लोलुप यौगिक अर्थ करते हैं । अतः रूढ़ि अर्थ करना भूल है ।

'शुनःशेप' के सम्बन्ध में अन्यान्य विद्वानों के मत

पं० रघुनन्दन शर्मा 'साहित्यभूषण' : "सायणाचार्य ने ऋग्वेद मं० १, सूक्त २४ से ३० तक के भाष्य में शुनः शेप की कथा लिखकर मनुष्य-बलि का एक भयंकर आदर्श सामने खड़ा कर दिया है । परन्तु वेद में इन बातों का कहीं नामो-निशान भी नहीं है । निरुक्त में शुनः शेप का अर्थ विज्ञानवेत्ता किया गया है ।"...[६]

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी : "......जिस सूक्त के आधार पर यह नरमेध सिद्ध किया जाता है उसमें हरिश्चन्द्र का नाम तक नहीं । यह ऋक् १।२४ सूक्त है जिसके प्रथम मंत्र का अर्थ यह है कि कोई पुरुष यह कथन करता है कि अमृतों में से मैं किस देवता का आराधन करूँ जो मुझको फिर माता-पिता के दर्शन कराये ।......

वास्तव में बात यह है कि परमात्मा ने इस सूक्त में जीव का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना कथन किया है, चाहे वह मुक्ति रूप अवस्था हो और चाहे

---

४. **"वैदिक वन्दन" पृ० २४-२५ (जनवरी १९५८ ई० प्रथमावृत्ति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली द्वारा प्राप्य)**

५. **"वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६५,**

६. **"वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५१४-५१५**

पुनर्जन्म रूप अवस्था हो। इसमें आग्रह करने की आवश्यकता नहीं। हाँ, यह अर्थ इस सूक्त का सर्वथा मिथ्या है कि किसी यज्ञ स्तम्भ के साथ बाँधे हुए लड़के ने यह प्रार्थना की कि तुम मुझे छुड़ाओ।......"[७]

महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज : "...इसी प्रकार से शुनः शेप के अर्थ निरुक्त में विद्वान् किये हैं।"[८]

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ : (ऋ० १-२४ के विषय में लिखते हैं)—ऐतिहासिक पक्ष इस समस्त सूक्त को अजीगर्त ऋषि के पुत्र शुनःशेप की कथा में जोड़ता है। हमको तो ये प्रथम दो मंत्र पुनर्जन्मपरक प्रतीत होते हैं।

हम देवों में किस देव का शुभ नाम लेवें अथवा किस देव की स्तुति करें जो कि हमको फिर माता-पिता के दर्शन कराये। देवों में अग्नि की ही स्तुति करते हैं, जिसकी कृपा से फिर माता और पिता के दर्शन होंगे।"[९]

श्री फिलिप्स (Philipps) जैसे पाश्चात्य वेदज्ञ को भी नरमेध के सम्बन्ध में शंका है। वे लिखते हैं :—"Looking at these passages alone, perhaps we are not justified in concluding that Sunasepa was bound as a victim to be sacrificed. His "bonds" and "ropes" may be taken in a figurative sense, denoting the fetters of sin, especially as we have seen before that sin is often compared to a "bond" or a "rope" in the Veda, and, indeed, it is so compared in the last verse of this very hymn."[10]

अर्थ :—केवल इन पंक्तियों को देखते हुए, शायद हम लोग अनुमानतः यह उचित निर्णय नहीं कर सकते हैं कि शुनःशेप यज्ञ में बलि के लिए बाँधा गया था उसका "बन्धन" और "यूप" आलङ्कारिक अर्थ में लिया जा सकता है, विशेषतया हम लोग देख चुके हैं कि वेद में पाप की 'बन्धन' और 'यूप' के साथ तुलना की गई है और यथार्थ में इस ऋचा के अन्तिम सूक्त में यह वर्णित है।

डॉ० नाथूलाल पाठक पीएच०डी०, प्राध्यापक राजकीय महाविद्यालय, कोटा :—"शुनःशेप के इस आख्यान का मूल हमें ऋग्वेद संहिता में मिलता है।

---

७. "वदिक काल का इतिहास" पृष्ठ ६० से ६२ तक (सन् १९२५ ई० प्रथम संस्करण, कर्णवास)

८. मासिक पत्र 'वैदिकधर्म" का "वेदाङ्क" वर्ष १९, सन् १९३८ ई० जनवरी, अङ्क १, पृष्ठ २० में प्रकाशित "वेद, उनका प्रादुर्भाव और उनके समझने का प्रकार" तथा "वेद रहस्य" प्रथम संस्करण, पृ० ३८,

९. "ऋग्वेदालोचन" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २५८,

10. The Teachings of the Vedas" PP. 200 तुलना करो पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ कृत "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" पृष्ठ ११८,

यद्यपि ऋग्वेद संहिता में आख्यानों की कोई सत्ता नहीं है, फिर भी अनेकों कथाओं और घटनाओं के संकेत इसमें विद्यमान हैं।……यह आख्यान ऐतिहासिक घटना के रूप में दिखाई देता है, किन्तु संहिता के प्रसंग से निरा काल्पनिक सिद्ध हो जाता है।" ……११

श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा 'अज्ञात' ने अपने लेख में "वैदिक साहित्य" का उद्धरण, नरमेघ की सिद्धि में दिया है। इसके लेखक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी हैं जो स्वयं ऋग्वेद में 'शुनः शेप' की कथा से नरमेघ नहीं मानते हैं। देखिए :

पौराणिक विद्वान् पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ ने "ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद" किया है। वे लोग ऋग्वेद १।२४ मंत्र १ की टीका करते हुए पादटिप्पणी में लिखते हैं :—

"२४ से ३०वें सूक्त तक वक्ता शुनः शेप ऋषि है। उनके सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण की ७वीं पञ्जिका में लिखा है कि रोहित के पिता राजा हरिश्चन्द्र ने रोहित को वलि देने का प्रस्ताव किया। (पुत्र होने पर उसे वरुणदेव के नाम पर वलि देने की प्रतिज्ञा राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से की थी) रोहित ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। इसके अनन्तर शुनःशेप को बलि देने की बात पर उनके पिता अजीगर्त को राजी कर लिया गया। शुनःशेप घोर विपत्ति में पड़े। अन्त को उन्होंने विश्वामित्र से सम्मति ली। विश्वामित्र ने देवों की स्तुति करने की राय दी। शुनःशेप ने मरण-कातर होकर इन सात सूक्तों में देवों की स्तुति की और इस तरह उन्हें मुक्ति मिली। रामायण, बालकांड, ६१, ६२ अध्यायों में उल्लेख है कि शुनःशेप के पिता ऋचीक (अजीगर्त नहीं) ने शुनःशेप को वलि देने के लिए अयोध्याराज के हाथ बेच दिया था। विश्वामित्र के परामर्शानुसार स्तुति करने पर इन्द्र ने प्रसन्न हो; शुनःशेप की प्राणरक्षा की थी। मनुस्मृति, भागवत, विष्णुपुराण आदि में भी शुनःशेप की कथा है। सायण ने लिखा है कि खम्भे में बांधे जाने पर शुनःशेप ने अपने इन सूक्तों में देवों की स्तुति की थी। राजेन्द्रलाल मित्र ने अपने "Indo-Aryan" ग्रन्थ में इन सूक्तों से यह नतीजा निकाला है कि पहले आर्यों में नर-बलि प्रचलित थी। परन्तु विचार करने पर मित्र महाशय का अनुमान गलत निकलता है, क्योंकि सूक्तों में एक आर्त्त भक्त (शुनःशेप) की स्तुति के सिवा बलि, विश्वामित्र की सलाह, स्तम्भ-बन्धन आदि की कोई बात नहीं है। बलि पर चढ़ने वाला ही आर्त्त नहीं होता—अध्यात्म विद्या में प्रवेश करने वाला प्रत्येक ईश्वरभक्त पहले आर्त्त होता है। अधिक तो क्या प्रत्येक स्तुतिकर्त्ता आर्त्त होता है। शुनःशेप वही थे। इसके सिवा ऋग्वेद में कहीं भी नरबलि का उल्लेख या आभास नहीं है। इसलिए वेदों में नर-बलि की बात दिखाना

११. "ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन" पृष्ठ १४८-१४६ (सन् १९६६ ई० रोशन लाल जैन एण्ड सन्स, चौरडी का रास्ता, जयपुर द्वारा प्रकाशित)

अनुचित है। जिस वेद में घी और सोमरस के अभिषव और आसव की बात है, उसमें नरबलि की बात कैसे हो सकती है ?'[१२]

अतः ऋग्वेद से नरमेध-प्रथा प्रदर्शित करना लेखक की प्रथम मूर्खता व वेदानभिज्ञता प्रकट करता है।

पृष्ठ ५१—"ऋग्वेद (१०-८६-१४) में इन्द्रदेव को अपनी हांकते हुए देखिए :—"उक्षणो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतिम्। उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।"

(मेरे लिए इन्द्राणी द्वारा प्रेरित यज्ञकर्त्ता लोग १५-२० बैल मार कर पकाते हैं, जिन्हें खाकर मैं मोटा होता हूँ। वे मेरी कुक्षियों को सोम से भी भरते हैं।)

समीक्षा—लेखक कोई ऋषि, मुनि या वेदों का कोई प्रसिद्ध विद्वान् नहीं है कि उसके अर्थ को मान लिया जाए। न वह अपने पक्ष की पुष्टि में किसी भाष्यकार की सहायता लेता है। चाँदी के चंद टुकड़ों के लोभ में लेखक ने अर्थ का अनर्थ करके श्रुति के साथ वलात्कार करने की कुचेष्टा की है। ऋ० १०।८६।१४ का सत्यार्थ देखिए :—

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ :

"(मे) मेरे (पञ्चदश उक्षणः) १५ बलयुक्त, शरीर के धारक प्राणों को अथवा (उक्षणः मे पञ्चदश) शरीर को धारण करने वाले मुझ आत्मा के (पंचदश) पन्द्रहों प्राणों को और (विंशतिम्) हाथ और पैर की २० अंगुलियों के समान शरीर के भीतर के २० अंगों को, वा (विंशतिम्) देह में प्रवेशशील आत्मा को विद्वान् लोग (साकं पचन्ति) एक साथ परिपाक, ज्ञान और अभ्यास से दृढ़ करते हैं वा विस्तार से वर्णन करते हैं। (उत) और मैं (पीवः) परिपुष्ट होकर (अद्मि) पुष्टिदायक भोग्य देह और नाना भोगों को वा उन प्राणों का भोग करता हूँ। वे समस्त प्राण (मे) मेरे (कुक्षी) दोनों कोखों, पार्श्वों में (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं। समस्त प्राण देह दायें, बायें दोनों ओर अपने अपने-स्थान पर अंग-प्रत्यंग में व्यापते हैं। वह (इन्द्रः) अद्भुत शक्तिशाली प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे ऊपर है। उसकी इस देह-रचना का कौशल अविज्ञेय है।"[१३]

'इन्द्र' का अर्थ परमात्मा श्री सायणाचार्य ने ऋ०१।३।४ के भाष्य में "... स च **परमेश्वरः** प्रविश्य दारयिता भीषयिता इति इन्द्रः" किया है।

पं० बिहारीलालजी शास्त्री, काव्यतीर्थ : उक्षा का अर्थ सर्वत्र बैल

---

१२. 'ऋग्वेद संहिता' सरल हिन्दी टीका सहित, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३०, ३१ की पाद टिप्पणी [आश्विन सवत् १९८८ वि० में वैदिक पुस्तकमाला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर (बिहार) से प्रकाशित]

१३. "ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य, सप्तम खण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २७४, २७५।

नहीं होता है। देखो यजु० १७।६ "उक्षा समुद्रः।" यहाँ उक्षा समुद्र का विशेषण है। उव्वट कहते हैं—"उक्षासेचनः"। महीधर का अर्थ है "उक्षा वृष्टिद्वारसेक्ता"। दूसरे मंत्र में भी पञ्चदश, विंशति, तथा साकं शब्द रहस्यपूर्ण हैं। ५ को १० से गुणा करने पर ५० और ५० को २० से गुणा करने पर एक सहस्र होता है। एक सहस्र उक्षाओं को पचा जाने पर इन्द्र पूर्ण तृप्त हो जाता है। उसकी दोनों कोखें ऐहिक और आमुष्मिक वासनाएँ तृप्त हो जाती हैं। वे एक सहस्र उक्षा हैं सहस्रारचक्र-सहस्र दल कमल वा मस्तिष्क का वह स्थान जहाँ सुरत ले जाने पर योगी अमर पद का अधिकारी बनता है। उस पर के नीहार—आवरण, बस उन आवरणों का हवन हो जाता है तो सहस्रार चक्र का पूर्ण विकास हो जाता है। योगी की इस दशा का कबीर, नानक आदि सन्तों ने भी ऐसी आलंकारिक भाषा में वर्णन किया है। ५; १० और २० इनका पृथक्-पृथक् प्रयोग भी साभिप्राय है। प्रथम ५ ज्ञानेन्द्रियों के आवरण दूर करना इन उक्षाओं के बलिदान के पश्चात् स्पर्शादि पञ्च विषयों का जय तथा पुनः पंच स्थूल और पंच सूक्ष्म भूत और इनके विषयों के उक्षाओं अवश्यायों को हवन करना। जब माया के इन उक्षाओं अवश्यायों अर्थात् आवरणों को दूर कर दिया जाता है, आध्यात्मिक यज्ञ में इन सबकी बलि हो जाती है, तो जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। निर्मल दर्पण में सूर्य रश्मियाँ प्रतिफलित होकर दर्पण को प्रकाशमान करती हैं। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा में प्रकाशित ब्रह्मानन्द-आवरणों के नष्ट हो जाने पर आत्मा को आनन्द से भर देता है, उस दशा के ही ये उद्गार हैं। आत्मा की कोई कामना नहीं रहती। पूर्णकाम, तृप्त आत्मा विश्व से ऊपर हो जाती है। "विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" यह वचन सिद्ध हो जाता है।"[१४]

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ वाराणसी—"हे ऋत्विजो! मेरे लिए जो (पंचदश) पन्द्रह पत्तों वाले सोम और (विंशतिम्) बीस प्रकार के (उक्षणः) पराक्रमवर्धक उत्तम-उत्तम पदार्थों को (साकं) इन्द्राणी के साथ (पचन्ति) पकाते हो (उत अपि च, अहम् अद्मि) मैं उनको खाता हूँ और खाकर (पीव इत्) स्थूल भी होता हूँ और (मे) मेरी (उभा) दोनों (कुक्षी) कोख सोम-रस से (पृणन्ति) परिपूर्ण हो जाती हैं (सः) वह मैं इन्द्र (सर्वस्मात्) सबसे (उत्तरः) उत्तम हूँ।"[१५]

पं० सत्यानन्द जी शास्त्री, एम० ए०—"मेरे पन्द्रह प्राणों को और (हाथ-पैर की २० अंगुलियों के समान) शरीर के भीतर के बीस अंगों को (विद्वान्

१४. **"पशुबलि और वेद"** पृष्ठ ८-९ [सं० २०१८ वि० केन्द्रीय आर्य सभा, आर्य-समाज मेस्टन रोड, कानपुर द्वारा प्रकाशित]

१५. **"वेद और पशुयज्ञ"** पृष्ठ ३२ [चौधरी एण्ड सन्स, नीचीबाग, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

लोग) एक साथ दृढ़ करते हैं और मैं पुष्ट होकर उन सब का उपभोग करता हूँ। वे (प्राण) मेरे दोनों पार्श्वों में व्याप्त होते हैं। वह इन्द्र सबसे ऊपर है।

यहाँ 'उक्षण' का अर्थ 'प्राण' हैं। शरीर अंगों की वृद्धि का मूलाधार होने के कारण प्राणों को 'उक्षा' कहा जाता है।

'यहाँ भी पचन्ति' क्रिया का अर्थ 'दृढ़ करना' है।"[१६]

पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड : "आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ निम्न प्रकार है—(मे) मेरे लिए विद्वान् लोग (उक्षण:) वीर्य सेचन या सुखवर्षण में समर्थ प्राणों को (पंचदश) १५ और (विंशतिम्) २० या उनमें प्रविष्ट आत्मा को (साकम्) एक साथ (पचन्ति) परिपक्व करते हैं। तपस्या द्वारा उनको दृढ़ करते हैं (उत) और (अहम्) मैं (अद्मि) उनका भोग करता हूँ, उनको स्वीकार करता हूँ, (पीवः इत्) और मैं अति बलवान् रहता हूँ वे (मे) मेरे (उभा कुक्षी) दोनों कोखों को (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार (इन्द्र:) परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तर:) सबसे उत्कृष्ट है। (पंचदश) ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये ५ प्राण मिलकर १५ हुए। उनके भीतर प्रविष्ट होकर रहने वाला आत्मा विंशति है।"

भौतिक दृष्टि से 'उक्षा' का अर्थ सोम वा ऋषभक ओषधि पहले सप्रमाण बताया जा चुका है। अत: मंत्र का अर्थ यह होगा कि—

'ऋत्विक् वा वैद्य मुझ इन्द्र-राजा के लिए (उक्षण:) सोम के (पंचदश) १५ पत्तों को (पचन्ति) पकाते हैं और उसके द्वारा (विंशतिम्) ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १० प्राण इन सबको (साकं पचन्ति) मिलकर परिपुष्ट करते हैं।

मैं उन्हें (अद्मि) खाता हूँ और खाकर (पीव: इत्) पुष्ट होता हूँ। मेरी दोनों कोखें सोम रस से पूर्ण हो जाती हैं।

सोमरस वा ऋषभक ओषधि के १५ पत्तों का विधिपूर्वक सेवन मनुष्य को बलवान् बनाता है ऐसा मंत्र में भौतिक दृष्टि से उपदेश किया गया है। बैल के मांस का अर्थ लेना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि उसको वेद में अघ्न्य: (अहन्तव्य—न मारने योग्य) कहा है।"[१७]

पं० विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड वेदोपाध्याय (ज्योतिषपरक अर्थ करते हुए)—"ऋग् १०।८६। १-२३ मंत्र ज्योतिष सम्बन्धी है। इनमें वृषा कपि, मृग, श्वा वराहयु, उक्षा, वृषभ, धन्व, कुन्तव, उदञ्चोगृहम्, पर्शु:—इत्यादि शब्द राशिचक्र के भिन्न-भिन्न भागों का वर्णन करते हैं। वर्षाकाल का वर्णन है। सूर्य जब

---

१६. **"क्या प्राचीन आर्य लोग मांसाहारी थे?" पृष्ठ २६ [बिरजानन्द वैदिक संस्थान, संन्यासाश्रम, गाजियाबाद द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]**

१७. **"वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८४-२८५ [संवत् २०१४ वि०, प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार]**

वृष राशि में होकर वर्षा करता है तब का यह वर्णन है। वृषराशि को ही उक्षा कहा है। वृषराशि के मुख्य तारे १५ हैं, शेष मिलाकर २० के लगभग हैं। जब सूर्य वृष राशि में तपता है यही मानो इन उक्षाओं का परिपचन है, परिपाक है। जब सूर्य वृष राशि में होता है तब वृष के तारे दृष्टिगोचर नहीं होते। यही मानो उनका भक्षण-सा है। यह सब अलङ्कार है।"[१८]

पं० प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनिजी विद्यामार्तण्ड): "ज्योतिषपरक अर्थ) (मे हि पञ्चदश साकं विंशतिम्-उक्षणः पचन्ति) हे पुत्रवधू ! मेरे लिए ही 'मेरे खगोलरूप उदर को भरने के लिए ही' पन्द्रह साथ बीस अर्थात् पैंतीस उक्षाओं-तेरे वीर्य सेचक ग्रह-उपग्रहों को प्राकृतिक नियम सम्पन्न करते हैं—व्यक्त करते हैं। अतः (पीवः) प्रवृद्ध हो गया हूँ (मे उभा कुक्षी इत पृणन्ति) मेरी दोनों कोखें दोनों गोलार्ध पार्श्व ग्रह-उपग्रहों से पूर्ण करते हैं…।[१९]

रिसर्च स्कालर पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य (भौतिक अर्थ करते हुए):—"पाश्चात्य लेखक ने ऋग्० १०।८६।१४ मंत्र के आधार से लिखा है कि इन्द्र उक्षा अर्थात् बैल का भक्षण करता है, उनका यह अर्थ भी भ्रामक है। इस मंत्र में उक्षा पद का अर्थ बैल नहीं, प्रत्युत सोम है।"

"…'मेरे लिए १५ तथा २० उक्षों अर्थात् सोम डंठलों को याज्ञिक पकाते हैं, मैं उन्हें खाता हूँ और स्थूल हो जाता हूँ। इस प्रकार याज्ञिक लोग मेरी दोनों कुक्षियों को भर देते हैं। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है।"

टिप्पणी—मंत्र ६।६६।४ में भी उक्षा पद सोम के अर्थ में आया है।"[२०]

यहाँ आठ विद्वानों के अर्थ दिये गये हैं जो इन्द्र द्वारा बैल खाने की चर्चा नहीं करते हैं। अतः 'सरिता' के लेखक की यह दूसरी मूर्खता व वेदानभिज्ञता प्रकट होती है।

पृष्ठ ५२—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८६, मंत्र १४ से स्पष्ट होता है कि गोहत्या ऐसी मामूली बात थी कि बातचीत में उपमा के लिए इसका प्रयोग होता था, देखिए—"मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते, अर्थात् : हे इन्द्र ! जैसे गोहत्या के स्थान पर गौएँ काटी जाती हैं, वैसे ही तुम्हारे इस अस्त्र से मित्रद्वेषी राक्षस लोग कट कर पृथ्वी पर सदा के लिए सो जायं।"

---

१८. वही, पृष्ठ २८४

१९. "वैदिक ज्योतिष् शास्त्र" पृष्ठ ४१ [सन् १९४६ ई० सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली से प्रकाशित]

२०. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ १११ [सन् १९७० ई०, हंसराज कालेज, संस्कृत विभाग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

समीक्षा—पूरा मंत्र इस प्रकार है—

र्काह स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ।।

—[ऋ० १०।८६।१४]

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव श   वद्यालंकार, मीमांसातीर्थ : "हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष ! हे स्वामिन् ! शत्रुविजयिन् ! (ते) तेरी प्रसिद्ध (अघस्य चेत्या) पापी का नाश कर देने वाली शक्ति (र्कहिस्वित्) कब (असत्) प्रकट होगी ? (यत्) जिससे तू (रक्षः भिनदः) दुष्ट शत्रुओं को भेदे, (मित्र-क्रुवः) मित्रों पर क्रूरकर्म करने वालों को (आ ईषत्) सब ओर से भयभीत करे (यत्) जिससे (शसने गावः नः) हत्यास्थान में पशुओं के तुल्य वे दुष्टजन भी (आपृक्) मर कर (अमुया पृथिव्याः) इस पृथिवी के ऊपर (शयन्ते) पड़ें ।"[२१]

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ: "हे (इन्द्र !) राजन् ! (ते) तेरा (सा चेत्या) वह वैरियों पर चलने वाला अस्त्र (र्कहिस्वित्) किसी समय भी (असत्) निरर्थक न होवे । (यत्) जब (अघस्य) न मरा हुआ अर्थात् बलवान् राक्षस (एषत्) मारने के लिए आये तब उसको (भिनद्) नष्ट करो (मित्रक्रुवः) मित्रों के साथ क्रूरकर्म करने वाले तेरे वैरी (शसने गावः न) जैसे वध्य भूमि में पशु मर कर गिर जाते हैं वैसे ही (अमुया) इस (पृथिव्या) विस्तृत अस्त्र से (आपृक्) सम्पर्क होते ही (शयन्ते) पृथिवी पर सो जावें ।

इस मंत्र में भी कहीं खाने-पकाने का नाम नहीं है । न तो इससे पशु मारने की विधि और न ऋषियों के खाने का प्रमाण मिलता है ।"[२२]

'उपमा' देने से गोहत्या सिद्ध नहीं हो सकती है । आजकल लोग कहते हैं कि हमारी सेना वैरियों को ऐसे काटती है जैसे कसाई लोग पशुओं को काटते हैं तो क्या इससे सिद्ध हुआ कि हम लोग मांस खाते हैं ?

अतः इस मंत्र से 'सरिता' के लेखक के अर्थानुसार भी गोमांस-भक्षण सिद्ध नहीं होता है । 'जैसे गोहत्या के स्थान पर गौएँ काटी हैं" यह तो उपमा है ।

पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड : "हे इन्द्र अथवा शूरवीर राजन् ! तेरा (सा) वह (हेतिः) शस्त्र (चेत्या) फेंकने योग्य (र्कहिस्वित्) कब (असत्) होगा (यत्) जब (अघस्य) पापी और (एषत्) युद्ध के लिए आते हुए (रक्षः) राक्षस को (भिनदः) मारेगा और (यत्) जब (गावो न) गायों की तरह (चारों हाथ पैर फैला-कर) (अमुया पृथिव्या) इस भूमि से (आपृक्) लिपटे हुए ये शत्रु (शसने) युद्ध स्थल में (शयन्ते) सो जायेंगे ।

---

२१. **"ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" सप्तम खण्ड, पृष्ठ ३१२**
२२. **"वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ३३**

प्रथम तो केवल उपमा से कोई बात सिद्ध करना ही अशुद्ध होता है। दूसरा यहाँ तो उपमा से भी गोहत्यादि की गन्ध तक नहीं है।

शसु हिंसायाम् से शसन शब्द बनता है जिसका अर्थ शयन करना या सोना है।···यदि शसन का अर्थ यहाँ गौओं का हत्या स्थान होता तो इस शयन्ते का प्रयोग न होकर 'हन्यन्ते' जैसा प्रयोग होता जिस प्रकार का कोई प्रयोग इस उपमा में नहीं है।*

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्त शास्त्री' का स्पष्ट मत है कि—

"ऋग्वेद (१।६१।१२) में 'गोर्न' उपमार्थक शब्द आया है, जिसे देखकर प्रो० विलसन और रमानाथ सरस्वती ने अनुमान लगाया है कि 'आर्य लोग गोमांस का व्यवहार करते थे'। परन्तु इन सज्जनों का अनुमान व्यर्थ है। सायण ने इसका अर्थ किया है—'जैसे पशु को कसाई काटते हैं।' यहाँ 'गो' का अर्थ साधारण पशु है और साधारण पशु को काटने वाले भी कसाई थे, आर्य नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि 'यज्ञ में गौ आदि पशुओं का वध होता था।' परन्तु वेदों में एक भी ऐसा मंत्र वा मंत्रांश नहीं है, जिससे इस विचार का अनुमोदन होता हो। गोमेध, अश्वमेध आदि में जो मेध शब्द है, उसका अर्थ 'पवित्र' है। यज्ञ को अध्वर कहा जाता है, जिसका अर्थ 'निर्मल' है। यज्ञ शब्द का अर्थ पूजन है। फिर पशुवध की बात कहाँ से आयी?"...[२३]

स्वामी महादेवानन्द जी गिरि—संन्यासाश्रम हरिद्वार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित "Vedic Culture" नामक अपने ग्रन्थ में एक अध्याय "Slaughter of Cows in Vedic age" दिया है। आप लिखते हैं—

"In the Rigveda it has been clearly stated that cows are not to be killed. In the following mantras the term अघ्न्या (not to be killed) is used vide 1-37-5; 1-164-27; 1-164; 40; 4-1-6; 5-83-8; 7-68-8; 7-69-8; 7-10; 9-1-9; 9-80-2; 9-93-3;10-46-3;10-60-11;10-87-16;and 10-102-7."*

अर्थात्—"ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है कि गायें नहीं मारी जातीं। निम्न मंत्रों में 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) व्यवहृत है यथा १-३७-५; १-१६४-२७; १-१६४-४०; ४-१-६; ५-८३-८; ७-६८-८; ७-६९-८; ७-१०; ९-१-९; ९-८०-२; ९-९३-३; १०-४६-३; १०-६०-११; १०-८७-१६ और १०-१०२-७।" अतः वेदों से गोहत्या सिद्ध करना अनुचित है।

---

*"गोरक्षा परमकर्त्तव्य और गोहत्या महापाप" पृष्ठ १३ [सवत् २०१० आर्य-साहित्य भवन, नई सड़क, दिल्ली द्वारा प्रकाशित]

२३. **"वैदिक साहित्य", पृष्ठ ३५९-३६० [नवम्बर १९५० ई०, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]**

*"Vedic Culture" PP. 132. **तुलना करो "वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २९४**

पृष्ठ ५२—'ऋग्वेद (५-२६-७; ८-१२-८ और ८-६६-१०) में देवताओं द्वारा बहुत-सी भैंसें खाने का वर्णन है। आगे बढ़ने से पूर्व यहाँ यह संकेत देना उचित होगा कि आर्य लोग जो कुछ अपने देवताओं के लिए उपहारस्वरूप अर्पित करते थे या जो कुछ यज्ञों में व्यवहृत करते थे, वह वे स्वयं भी खाया करते थे।…"

समीक्षा—प्राचीन व अर्वाचीनकाल में आर्य लोग भैंसें नहीं खाते थे और न खाते हैं। मुसलमान अवश्य खाते हैं। लेखक को उचित था कि पूर्ण मंत्र देकर अर्थ करता या अपने अर्थ की पुष्टि में किसी भाष्यकार को प्रस्तुत करता; निराधार लिख मारना अनुचित है।

ऋ० ५।२९।७ का पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

"सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम्॥"

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का भाष्य : "(सखा) मित्रम् (सख्ये) (अपचत्) पचति (तूयम्) तूर्णम् (अग्निः) पावकः (अस्य) (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्म्मणा वा (महिषा) महिषाणां महताम् पशूनाम् (त्री) त्रीणि शतानि (त्री) (साकम्) (इन्द्रः) सूर्य्यः (मनुषः) मनुष्यस्य (सरांसि) तडागान् (सुतम्) वर्षितम् (पिवत्) पिबति (वृत्रहत्याय) मेघस्य हननाय (सोमम्) ऐश्वर्यम्।"

भावार्थ :—"अत्र वाचकलु०। यथा सूर्य्य ऊर्ध्वाऽधोमध्यस्थान् स्थूलान् पदार्थान् प्रकाशयति तथोत्तम मध्याऽधमान् व्यवहारान् राजा प्रकटीकुर्य्यात् सर्वैः सह सुहृद्वर्त्तेत॥"

पदार्थ :—"जैसे (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य्य (तूयम्) शीघ्र (अस्य) जगत् के मध्य में (त्री) तीनों भुवनों को प्रकाशित करता हुआ (सरांसि) तड़ागों का (पिवत्) पान करता है और (वृत्रहत्याय) मेघ के नाश करने के लिए (सुतम्) वर्षाये गये (सोम) ऐश्वर्य को (अपचत्) पचाता है वैसे (सखा) मित्र (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से (सख्ये) मित्र के लिए (साकम्) सहित (मनुषः) मनुष्य के (महिषा) बड़े पशुओं के (त्री) तीन (शतानि) सैकड़ों की रक्षा करे।"

भावार्थ :—इस मंत्र में वाचक लु०—जैसे सूर्य्य ऊपर नीचे और मध्यभाग में वर्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम, मध्यम और अधम व्यवहारों को राजा प्रकट करे और सबके साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करें।"[२४]

महर्षि दयानन्द जी ने 'महिषा' का अर्थ निघण्टु के आधार पर 'बड़ा' किया है। श्री सायणाचार्य भी ऋ० ८।१२।८ में 'सहस्रं महिषान्' के वध का उल्लेख करते हुए "महतोऽसुरान् वृत्रादीन्" अर्थ करते हैं। 'महतो'=महान्।

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने भी 'महिषा' का अर्थ 'बड़ा' किया है।[२५]

२४. **"ऋग्वेद भाष्यम्" सप्तम भागात्मकम्, पञ्चम मण्डलम्, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २१४-२१५।**

२५. **"ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" तृतीय खण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७७५-७७६**

शास्त्रार्थ महारथी पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ : "(अस्य) इस सूर्य का (सखा) सहायक (अग्निः) ग्रीष्मकालाग्नि (सख्ये) मित्र सूर्य के लिए (त्रीणि) तीन (शतानि) अतुल (महिषा) बड़े (मनुषः) मनुष्यों के उपकारक (सरांसि) जलाशयों को (तूयं) शीघ्र (कृत्वा) अपने तपन रूप कर्म से (अपचत्) पकाता [औंटाता] है और उन (त्री) तीनों के वाष्प द्वारा (सुतम्) खींचते हुए (सोमम्) जल को (वृत्रहत्याय) जल बरसाने के लिए (इन्द्रः) सूर्य (साकं) एक साथ ही (अपिवत्) पी लेता है—सोख लेता है।

तात्पर्य यह है कि सूर्य का सहायक मित्र अग्नि सूर्य के लिए तीन बड़े-बड़े अन्तरिक्ष, पृथ्वी, द्युलोक स्थित जलाशयों को अपनी ग्रीष्मकालोष्मा से मेघ बरसाने के लिए एक ही बार सोख लेता है।"[२६]

महर्षि दयानन्द जी, शर्मा जी तथा चौधरी जी तीनों विद्वानों ने 'महिषा' का अर्थ 'बड़ा' किया है जो निघण्टु के अनुसार उचित है :—

"महिष ३।३, महान्, ५०१"*

पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य : इन्द्र के सखा अग्नि ने इन्द्र के लिए तीन सौ (महिषों) मेघों को शीघ्र ही पकाया। इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिए यजमान के तीन पात्रों में स्थित सोम रस को एक बार में ही पी लिया।"[२७]

शास्त्री जी ने 'मेघ' अर्थ किया है।

सायण ऋ० १०।१२३।४ में महिष का अर्थ 'मेघस्य शब्दम्" करते हैं।

'महिष' के अन्यान्य अर्थ :—

"अग्निर्वै महिषा"··· (शतपथ, ब्रा० ७।३।१।३४), यजु० १२।१११ अग्नि अर्थ में।

"प्राणा वै महिषाः" [शतपथ ब्रा० ६।७।४।५], यजु० १२।२० प्राणों के अर्थ में।

"ऋत्विजो वै महिषाः" [शतपथ ब्रा० १२।८।१।२], यजु० १२।३२ ऋत्विज् के अर्थ में।

श्री ग्रिफिथ ने ऋ० १०।१८६।२ में आये 'महिष' का अर्थ 'सूर्य' किया है—

ऋ० ८।१२।८ का सत्यार्थ :—

"यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित इन्द्रियं महि प्र वावृधे॥"

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ :—"हे (प्रवृद्ध) सबसे

---

२६. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ३४-३५

*"निघण्टु निरुक्त पदसूची" [पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार कृत 'निरुक्तभाष्य' उत्तरार्ध प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ८४६]

२७. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ ११४

महान् ! हे (सत्पते) सत्, व्यक्त जगत् सत्पदार्थों, सज्जनों और सत्य ज्ञान के पालक ! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, अनेक बड़े-बड़े शक्तिशाली सूर्य, मेघ, समुद्र, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, वा सहस्रों बड़े विघ्नों का नाश करता है (आत् इत्) इससे ही तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य, बल और आत्म-सामर्थ्य (प्रववृधे) बहुत बड़ा है।"[२८]

पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य : "हे प्रवृद्ध ! हे सत्पते इन्द्र ! सहस्रों (महिषों) मेघों को तूने (अघः) खाया (मारा) !

सायण ने भी यह अर्थ किया है—

'महतो असुरान् वृत्रादीन् यदा (अघः) अवधीः।

यहाँ पर 'महिष' का अर्थ 'मेघ' है।"[२९]

'महिष' के सम्बन्ध में ऊपर प्रमाण दिये जा चुके हैं।

यहाँ भी भैंसा खाने की चर्चा नहीं है।

पौराणिक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री तथा पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ : "प्रबुद्ध और अनुष्ठाताओं के रक्षक इन्द्र, जिस समय तुमने सहस्रसंख्यक वृत्र आदि असुरों का वध किया, उसके अनन्तर ही तुम्हारा महान् बल भलीभाँति बढ़ा।"[३०]

ऋ० मण्डल ८ सूक्त ६६ मंत्र का सत्यार्थ :—

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटां अहर्दृश उत क्रत्वा पणींरभि॥

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ :

"हे मनुष्यो ! (अस्य+तविषीः) इसकी शक्तियाँ (कदू) कितनी (महीः) बड़ी पूजनीय और (अधृष्टाः) अक्षुण्ण हैं (वृत्रघ्नः) इस निखिल दुःख निवारक भगवान् का यश (कदु) कितना (अस्तृतम्) अविनश्वर और महान् है। हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) वह परमात्मा मनुष्य जाति की भलाई के लिए (विश्वान्) समस्त (बेकनाटान्) सूदखोरों को (क्रत्वा) उनके कर्म के अनुसार (अहर्दृशः) इसी जन्म में सूर्य्य को देखने देता है दूसरे जन्म में उनको अन्धकार में फेंक देता है। (उत) और (पणीन्) जो वणिक् मिथ्या व्यवहार करते हैं, असत्य बोलते हैं, असत्य तोलते, गौ आदि उपकारी पशुओं को गुप्त रीति से कसाइयों के हाथ बेचते इस प्रकार के मिथ्या व्यवसायी को वेद में पणि कहते हैं उनको भी वह इन्द्र (अभि) चारों तरफ से समाजों से दूर फेंक देता है।

२८. "ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" पंचम खण्ड; प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २८८

२९. "क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ ११५

३०. ऋग्वेद संहिता [सरल हिन्दी टीका सहित] षष्ठ अष्टक [दोनों खण्ड], प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३

भावार्थ :—वेकनाट—संस्कृत में इसको कुसीदी, वृद्धिजीवी आदि नामों से पुकारते हैं। जो द्विगुण त्रिगुण सूद खाता है। शास्त्र, राजा और समाज के नियम से जितना सूद वँधा हुआ है उससे द्विगुण त्रिगुण जो सूद लेता है वह वेकनाट। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार लोग करते हैं। बे+क+नाट=द्वि शब्द के अर्थ में वे शब्द है। मैं एक रुपया आज देता हूँ। ठीक एक वर्ष में दो रुपये मुझे दोगे। इस प्रकार गुण प्राप्त होने पर जो नाट=नाचता है उसे बेकनाट कहते हैं। उसकी शक्ति अनन्त है। वह जगत् के शासन के लिए दुष्टों को सदा शासन करता है यह इसका आशय है।"[३१]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ : "अथवा (अस्य) इसकी (महीः) वड़ी (तविषीः) शक्तियाँ (कत् उ) कितनी हैं ? अपरिमित हैं। (अस्य वृत्रघ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, नित्य स्थायी वल का स्वरूप (कत् उ) कितना और कैसा है ? यह नहीं कहा जा सकता है। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक-नाटान्) सव महाजनों वा विवेकी (उत) और (अहः दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले सव व्यवहार कुशलों को भी (क्रत्वा) अपने ज्ञान से (अभि) परास्त करता है। वह सर्वोपरि है।"

बेकनाटा :—वे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे। एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ. नयेन दर्शयति। ततो द्वि शब्दैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इतिः सायणः। एक-एक के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' कहाते हैं। अथवा वेकनाट :—न ते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्‌नाटञ्‌-भ्रटजः "पा० ५।२।३१" इति नाटच्। वेकनाटा, बेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा। अथवा विचिक पृथग् भावे, वेकः पृथग्भावः, वेकनाटाः छिन्ननासः, विनासिका, विवेकशीलनासिकाः कुशला वा।"[३२]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ :

"इन्द्र का महाबल कव अधर्षक हुआ था। इन्द्र का वध्य कव अवध्य रहा ? इन्द्र सारे सूदखोरों, दिन गिनने वालों (पारलौकिक दिनों से शून्यों) और वणिकों को ताड़न आदि के द्वारा दवाते हैं।"[३३]

टिप्पणी—त्रिवेदी जी ने इस मंत्र का पता ऋ० मंडल ८, सूक्त ५५, मंत्र १० दिया है। इस मंत्र में 'महिष' की चर्चा तक नहीं है। त्रिवेदी जी ने ऋ० ८।६६।१०

---

३१. "ऋग्वेद-भाष्यम्" पृष्ठ २१५ [विक्रमाब्द : १९८७ वि० वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित व प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

३२. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" पञ्चम खण्ड, पृष्ठ ६३०

३३. "ऋग्वेद संहिता" [सरल हिन्दी टीका सहित] षष्ठ अष्टक, पृष्ठ १३५

का मंत्र "विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः । शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्" दिया है। वास्तव में इस मंत्र का शुद्ध पता ऋ० ८।७७।१० है। वैदिक यंत्रालय अजमेर के मुद्रित 'ऋग्वेद' में तथा सायण ने भी यही पता शुद्ध माना है। 'सरिता' के लालबुझक्कड़ लेखक का शायद ८।७७।१० के मंत्र से तात्पर्य हो, क्योंकि इसमें 'महिषान्' शब्द आया है। अतः इस पर भी विचार किया जाता है।

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥

पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ : "(इन्द्र) हे महाराज (त्वेषितः) आप से सुप्रार्थित (उरुक्रमः) सर्वत्र स्थित (विष्णुः) परमात्मा भी (तान्) उन-उन आवश्यक (विश्वा + इत्) समस्त वस्तुओं को (आ + भरत्) देता है। वह ईश्वर आपके राज्य में (शतम् + महिषान्) अपरिमित भैंस, गौ, अश्व, मेष और हाथी पशु देता है और (क्षीरपाकम् + ओदनम्) दूध में पका भात और (एमुषम्) जलप्रद (वराहम्) मेघ देता है। यह आपकी ही प्रार्थना का फल है अतः आप धन्य और प्रशंसनीय राजा हैं।

भावार्थ :—मेघ से घासों और अन्नों की वृद्धि होती उनसे पशुओं की और पशुओं से दूध दही की। जिसके राज्य में सदा वर्षा होती है और मनुष्य निरामय सुखी हों तो समझना कि राजा धर्मात्मा है।[३४]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ : "जिस प्रकार सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (त्वा इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरुक्रमः) बड़ा पराक्रमी (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन-उन समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूध में पके भात के समान सात्त्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे। सूर्य भी अपरिमित बड़े-बड़े मेघ (क्षीरपाकं) पानी से संचित होकर पकने वाले अन्नादि धान्य और जल को लाने वाली वायु को धारण करता है।"[३५]

पं० रामगोपालजी शास्त्री वैद्य : "इस मंत्र में 'महिष और 'वराह' दोनों पदों को देख कर वेदानभिज्ञ व्यक्ति को संशय हो जाता है कि १००भैंसों को और वराह (सूअर) को इन्द्र खाता है। वास्तव में महिष और वराह ये दोनों पद वेद में मेघों के लिए आये हैं।

---

३४. "ऋग्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ३०२

३५. "ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य" पंचम खण्ड, पृष्ठ ६९५-६९६

'वराह' पद मेघ के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसके लिए प्रमाण—

'विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ।' ऋक् १।६१।७

इस मंत्र में वराह मेघ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यास्काचार्य ने भी—**"विराह" वाराहो मेघोभवति वराहारः । वरमाहारमाहर्षीः, इति च ब्राह्मणम् ।**

निरुक्त ५।४, निघण्टु १।१० में भी वराह पद मेघ नामों में पढ़ा गया है। इस प्रकार पाश्चात्य मान्यता के लेखकों को वैदिक साहित्य का ज्ञान न होने से, भ्रम हो गया अथवा जान-बूझकर अर्थ बिगाड़ा गया है।[३६]

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी व पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ :

"इन्द्र, तुम्हारा जो सब जल है, उसे विष्णु (आदित्य) प्रदान करते हैं। विष्णु आकाश में भ्रमण करने वाले (बहुगति) और तुम्हारे द्वारा प्रेरित हैं। इन्द्र ने सौ महिषों (पशुओं), क्षीर-पक्व अन्न और जल चुराने वाले मेघ (वराह) को भी दिया।"[३७]

त्रिवेदी जी व झा जी दोनों पौराणिक पण्डित हैं। इन लोगों ने 'विष्णु' का अर्थ 'आदित्य', 'महिषों' का अर्थ 'पशुओं', 'वराह' का अर्थ 'मेघ' किया है।

इससे भैंस और सूअर खाने का अर्थ कहाँ प्रकट होता है ?

श्री सायण भाष्यम् : "नैरुक्तपक्षे तावत् । हे इन्द्र (ता) तानि यानि त्वया स्रष्टव्यानि उदकानि सन्ति तानि (विष्णुः) व्यापनशील आदित्यः (आभरत्) आभरति । लोकाय प्रयच्छति इत्यर्थः । कीदृशो विष्णुः (उरुक्रमः) बहुगतिः । किं स्वविरोधेन ? नेत्याह । (त्वेषितः) त्वयाप्रेरितः । न केवलं उदकानि एवं अपि च (शतं महिषान्) शत संख्याकान् पशून् । महिषशब्दो गवादेरपि उपलक्षकः, अथवा शत शब्द महतो यज्ञान् यजमानेभ्य आभरत् ददाति इत्यर्थः । किंच (क्षीरपाकम्) क्षीरपक्वम् (ओदनं) पायसम् । एतच्चरुपुरोडाशादेरुपलक्षणाम् । तद् यजमानेभ्य आभरत् । अथवा सर्वार्थं वृष्टिप्रदानद्वारौदनं प्राहरत् । किं च (इन्द्रः) (वराहं) जलपूर्णं मेघं हन्तीति शेषः । कीदृशं तम् ! (एमुषम्) आ इत्यस्य स्थाने छान्दस एकारः । आमुषम् उदकस्य मोपकम् इत्यर्थः ।"

यहाँ इतनी बातों का पता चलता है—

(क) विष्णु अर्थात् आदित्य न केवल जल अपितु सैकड़ों पशुओं को जीवन भी देता है। सौ भैंसों को खाने की बात चली गई।

(ख) शतं 'महिपान्' का अर्थ है सौ बड़े-बड़े कार्य या यज्ञ जिनमें पायस, पुरोडाश आदि पकाये जाते हैं। यहाँ 'महिष' का अर्थ 'भैंसा' नहीं अपितु 'यज्ञ' है।

(ग) 'वराह' का अर्थ 'सुअर' नहीं 'मेघ' है जो जल से पूर्ण है।

---

३६. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?" पृष्ठ ११६

३७. ऋग्वेद संहिता (हिंदी टीका सहित) षष्ठ अष्टक, पृष्ठ १६१

सायणाचार्य जी के अर्थ से अवतारवादियों के 'सुअर' का अवतार उड़ जाता है।

(घ) 'शतं महिषान्' के दो अर्थ—अपरिमितान् प्रशस्तान् पदार्थान्=बहुत से उत्तम पदार्थ।

(ङ) तेषां वाहनरूपान् महिषान्=वाहनरूप (ढोने वाले) भैंसे।

(च) 'वराह' का अर्थ 'वराहार' या असुर किया है।

इस प्रकार 'सरिता' के लेखक ने वेदमंत्रों से जो भ्रम फैलाने का कुप्रयास किया था उसे दूर कर दिया गया।

पृष्ठ ५२—यजुर्वेद के २१वें अध्याय के ४३वें मंत्र में कहा गया है। :—

"अश्विनीकुमारों के लिए बकरे की ताजी चरबी से यज्ञ करना चाहिए" और 'जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता (होमकरने से बची सामग्री को खाने वाला) वेदवित्···मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है' (देखें यजुर्वेद अ० १९ मंत्र २०, दयानन्द स्वामी कृत भाष्य)

यहीं हम दयानन्द स्वामी—वेदों के आधुनिक महापंडित—की प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' का भी उद्धरण प्रस्तुत कर दें तो असंगत न होगा। उक्त पुस्तक में प्रस्तुत विषय पर उन्होंने लिखा है, "जहाँ गोमेधादिक यज्ञ लिखे हैं, वहाँ पशुओं में नरों का मारना लिखा है, क्योंकि जैसे पुष्ट बैल आदि नरों में हैं, वैसे गाय आदि नहीं होते, जो वन्ध्या गाय होती है, उसका भी गोमेध में मारना लिखा है (देखें—स० प्र०, सन् १८७५, पृ० ३०३, दयानन्द भाव चित्रावली : पृष्ठ २८ पर उद्धृत)।"

समीक्षा—यजु० २१।४३ का अर्थ अशुद्ध किया गया है।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो···हविर्होतर्यज।

महर्षि दयानन्द सरस्वती : "हे (होतः) देने हारे! जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकना भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवे वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री को (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिन का पहिला अन्न (घासे अज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुँचाने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिनके उत्तम-उत्तम आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिनके देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिनके मोटे-मोटे कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्होंने भली-भाँति अग्नि विद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटि प्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिसमें कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उघाड़ते हुए अंग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से

व्यवहार वा (अवत्तानाम्)नमे हुए उत्तम अंगों(एव)ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः)करें और(हविः) उक्त पदार्थों के खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर।

भावार्थ—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि का अच्छा-अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभाव युक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं।"[३८]

महर्षि दयानन्द जी के भाष्य में यहाँ कहाँ लिखा है कि 'अश्विनीकुमारों के लिए बकरे की ताजी चरबी से यज्ञ करना चाहिए।'

लेखक को शायद दिवास्वप्न हुआ है।

पौराणिकों का किया हुआ अर्थ अशुद्ध है।

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ ने इस मंत्र का आधिभौतिक वा आध्यात्मिक दो अर्थ किये हैं। पौराणिकों के अर्थ पर लिखते हैं :—"इस मंत्र का उव्वट और महीधर ने बकरे के कोख, कमर, लिंग, गुदा आदि भागों से माँस काट-काट कर अश्वि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है। सो असंगत है। वस्तुतः इसमें अश्वि नाम व्यापक बड़े अधिकारी लोगों को नियुक्त करने और सेना बल के निमित्त सैनिक लेने एवं अध्यातम में प्राणायाम द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उपदेश किया है।"[३९]

"पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या। छन्दोभिः सामिधेनी-र्याज्याभिर्वषट्कारान्"—(यजु० १९-२०)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती : "(पशुभिः) गवादिभिः (पशून्)गवादीन् (आप्नोति) (पुरोडाशैः) पचनक्रियासंस्कृतैः (हवींषि) होतुमर्हाणि वस्तूनि (आ) (छन्दोभिः) प्रज्ञापकैर्गायित्र्यादिभिः (सामिधेनीः) सम्यगिध्यन्ते याभिस्ताः सामिधेनीः (याज्याभिः) याभिः क्रियाभिरिज्यन्ते ताभिः (वषट्कारान्) ये वषट्धर्म्या क्रियां कुर्वन्ति तान्।

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽत्र बहुपशुर्हविर्भुग्वेदवित्सत्क्रियो मनुष्यो भवेत् स प्रशंसामाप्नोति।

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे सद्गृहस्थ (पशुभिः) गवादि पशुओं से (पशून्) गवादि पशुओं को (पुरोडाशैः) पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्दों की विद्या से (सामिधेनीः) जिनसे अग्नि प्रदीप्त हो उन सुन्दर समिधाओं को (याज्याभिः) यज्ञ की क्रियाओं से (वषट्कारान्)जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं उनको (आ, आप्नोति)

---

३८. "यजुर्वेद भाष्यम् " तृतीयो भागः, द्वितीयावृत्ति (अजमेर), पृष्ठ ४३-४४
३९. "यजुर्वेद संहिता भाषाभाष्य" द्वितीय खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २१०

प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ।

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है।[४०]

महर्षि दयानन्द जी के इस भाष्य व भावार्थ से यह कहाँ प्रकट होता है कि बहुत पशुवाला पशुओं का होम करे। भाष्य उद्धृत करने का आपका यही नापाक इरादा है अन्यथा जिसकी आँख फूट गई हो वही ऐसा समझेगा।

इसका वास्तविक तात्पर्य भाष्य में देखिए जहाँ स्पष्ट लिखा है कि "गवादि पशुओं के पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से हवन करे…।"

दूध, घृत आदि उत्तम पदार्थ हैं उनसे हवन करने का विधान है। जिसके पास बहुत पशु नहीं होंगे उसको दूध, घृत पर्याप्त न मिलने से हवन कैसे करेगा ?

इस साधारण-सी बात को आप बतंगड़ बना रहे हैं।

सन् १८७५ के 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम संस्करण को महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवन काल में ही रद्द कर दिया था और दूसरे संस्करण का बहुत-कुछ अंश उनके जीवनकाल में मुद्रित हो चुका था जो प्रामाणिक माना जाता है। द्वितीय संस्करण की पाण्डुलिपि अजमेर में है जिसमें 'गोमेध' आदि में गाय का मारना नहीं लिखा है। आपने यह आक्षेप "दयानन्द भाव चित्रावली" से किया है जिस पर प्रतिबंध लगा हुआ है। उस पुस्तक से आक्षेप करना मूर्खता नहीं तो क्या है। 'दयानन्द भाव चित्रावली' का उत्तर आर्य जगत् के विद्वानों ने दिया था—शास्त्रार्थमहारथी पं० मनसाराम जी 'वैदिकतोप' ने "पौराणिक दम्भ पर वैदिक वम" पुस्तक में तथा पं० भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक ने 'त्रिशूली-त्रिशूलोच्छेदन"[४१] पुस्तक में। पहली पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया और शर्माजी की पुस्तक अभी भी मिलती है।

शर्मा जी ने पृष्ठ ४१-४२ में उत्तर दिया था, देख लें। 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम संस्करण में भी 'गोवध' का निषेध महर्षि दयानन्द जी ने किया है। देखिए—"… एक गाय से लाख मनुष्यों का पालन हो सकता है उसको मार के मांस से ८० पुरुष तृप्त हो सकते हैं फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल्य ही नष्ट हो जाता है जो बैल आर्यावर्त्त में पाँच रुपयों से आता था सो अब ३० से भी नहीं आता और कुछ गांव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उसकी सीमा में भूमि रखनी चाहिए जिसमें कि वे पशु चरें जैसी दुग्धादिक से मनुष्य शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्नादिकों से नहीं होती और बुद्धि भी नहीं बढ़ती इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिए कि जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होते

४०. **"यजुर्वेद भाष्यम्, द्वितीयो भागः, तृतीयावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ ६२१,**
४१. **सन् १९२७ ई० में श्री भारतेन्द्र औषधालय के अध्यक्ष प० इन्द्रदत्त शर्मा वैद्योपाध्याय, संभल, जि० मुरादाबाद द्वारा प्रकाशित।**

हैं वे कभी न मारे जायं।"...४२

'सत्यार्थप्रकाश' 'द्वितीय संस्करण : एकादश समुल्लास में भी महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं :—

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है ?

उत्तर—इसका अर्थ तो यह है कि—

'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' (शत० १३।१।६।३)

'अन्नं हि गौः' (शत० ४।३।१।२५)

'अग्निर्वा अश्वः' (शत० ३।६।२।५)

आज्यं मेधः' (शत० १३।३।६।२)

घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार कर होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई और जहाँ-जहाँ लेख हैं, वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो, राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा यजमान और अग्नि में भी घी आदि का होम करना'अश्वमेध'। अन्न, इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध', जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहलाता है।"

'सत्यार्थ प्रकाश' की द्वितीयावृत्ति महर्षि दयानन्द जी ने स्वयं लिखी थी। इसमें निम्नांकित प्रमाण हैं—

'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रथम संस्करण सन् १८७५ ई० में स्टार प्रेस बनारस में मुरादाबाद निवासी श्री राजा जयकृष्णदास जी के व्यय से मुद्रित हुआ था।

'सत्यार्थप्रकाश' का द्वितीय संस्करण सन् १८८४ ई० में वैदिक यंत्रालय, प्रयाग में मुद्रित हुआ था और उसका ही पुनर्मुद्रण प्रयाग तथा अजमेर आदि नगरों में हुआ, यही वह सत्यार्थप्रकाश है जो कि महर्षि दयानन्द जी तथा आर्यसमाज को मान्य है।

महर्षि दयानन्द जी का देहावसान ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० तदनुसार दीपावली संवत् १९४० वि० को हुआ था।

'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका निर्माण किस प्रकार हुआ। यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द जी की जन्मभूमि काठियावाड़ (गुजरात) में थी, इसलिए उनकी मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने अध्ययन संस्कृत भाषा में किया था इसलिए वे संस्कृत भाषा में प्रगल्भ थे। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने कोई विदेशी भाषा अथवा भारत की प्रान्तीय भाषा भी सीखी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए महर्षि दयानन्द जी गुजराती तथा

---

४२. असली सन् १८७५ का सत्यार्थप्रकाश, पृ० ५०८-५०९ (संवत् १९८६ वि० में बी० एन० प्रेस, इटावा में मुद्रित व पं० कामता प्रसाद दीक्षित, अमरौधा, जि० कानपुर द्वारा प्रकाशित, तृतीयावृत्ति)

संस्कृत भाषायें ही जानते थे यह निश्चित है। महर्षि जी ने सन् १८६४ ई० में विद्याध्ययन समाप्त किया और श्री स्वामी विरजानन्द जी से विदाई ली। उस समय से लेकर मई सन् १८७४ ई० तक उत्तर भारत में वे संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान देते रहे और कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् उनके व्याख्यान का प्रान्तीय भाषा में अनुवाद किया करता था। इन्हीं दिनों में कलकत्ते में एक विशेष घटना हुई। २३ मार्च सन् १८७३ ई० को महर्षि जी ने एक व्याख्यान संस्कृत भाषा में कलकत्ते में श्री गोराचाँद के मकान पर दिया था। ब्राह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन भी उस व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान का बंगभाषा में अनुवाद पं० महेशचन्द्र 'न्यायरत्न' ने किया। अनुवाद के समय संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों ने यह आपत्ति उठाई कि न्यायरत्न महोदय स्वामी जी के अभिप्राय का अन्यथा वर्णन कर रहे हैं और ऐसी बातें कर रहे हैं जो स्वामी जी ने नहीं कही। इस पर श्री केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को सम्मति दी कि वे प्रान्तीय भाषा सीखकर उसमें ही व्याख्यान दिया करें। स्वामी जी ने इस सम्मति को स्वीकार कर लिया और हिन्दी भाषा सीखनी आरम्भ की। सबसे प्रथम स्वामी जी ने मई सन् १८७४ ई० में वाराणसी में हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने का प्रयत्न किया। इससे स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी उस समय तक हिन्दी भाषा नहीं जानते थे।

उन दिनों श्री राजा जयकृष्णदास जी वाराणसी के डिप्टी कलेक्टर थे। आपने स्वामी जी से अपने विचारों को पुस्तकाकार करने की प्रार्थना की, स्वामी जी ने इसे स्वीकार कर लिया। तब राजा साहब ने पं० चन्द्रशेखर* नाम के व्यक्ति को पुस्तक लिखने के लिए नियुक्त किया। स्वामी जी अपनी भाषा में बोलते थे और पं० चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। स्वामी जी हिन्दी जानते ही नहीं थे, अवश्य संस्कृत में बोलते होंगे और पण्डित चन्द्रशेखर हिन्दी में अनुवाद करके लिखते होंगे। इस प्रकार सत्यार्थप्रकाश का निर्माण जून सन् १८७४ ई० को आरम्भ हुआ और वह सन् १८७५ ई० में वाराणसी में मुद्रित हुआ।

इसके दो वर्ष के अनन्तर अर्थात् सन् १८७७ ई० में श्री स्वामी जी एक स्थान पर मृतक श्राद्ध पर व्याख्यान दे रहे थे और उसका खंडन कर रहे थे। इतने में ही एक व्यक्ति ने जनता में से ही पुस्तक दिखलाकर कहा कि स्वामी जी ने पुस्तक में तो मृतक श्राद्ध का मण्डन किया है और व्याख्यान में खण्डन कर रहे हैं। स्वामी जी के पूछने पर उसने 'सत्यार्थप्रकाश' दिखला दिया। स्वामी जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि आक्षेप उचित है और लेखक ने कुछ मास पश्चात् ही सन् १८७८ ई० में एक नोटिस

***राजा जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' लिखने के लिए एक महाराष्ट्रीय पंडित चन्द्रशेखर को नियुक्त किया। महर्षि बोलते जाते थे और पण्डित चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। (देखो—पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का जीवन चरित, पृष्ठ २७२)**

मुद्रित करवाया जो "यजुर्वेदभाष्य" के प्रथम अंक के टाइटिल पृष्ठ पर मुद्रित हुआ। वह नोटिस इस प्रकार था—

सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों और उनके अनुकूल हैं, उनको मैं मानता हूँ, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये 'सत्यार्थप्रकाश' वा 'संस्कार विधि' आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन ग्रन्थों के मतों को जनाने के लिए लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती है उन सबको प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वर-वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य हैं और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाए वेदानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ। और जो 'सत्यार्थप्रकाश' के पृष्ठ ४२, पंक्ति २५ में—पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण करे और जो मर गए हैं उनका तो अवश्य करें। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिए कि "जीवितों की श्रद्धा सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हैं उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।"[४३]

अब 'सत्यार्थप्रकाश' द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में विचार कीजिए। श्री स्वामी जी ने इसकी भूमिका उदयपुर में भाद्रपद सं० १६३६ वि० में समाप्त कर दी थी जैसा कि भूमिका के अन्त में छपा है। निःसन्देह यह ग्रन्थ स्वामी जी की मृत्यु-तिथि दीपावली संवत् १६४० से एक वर्ष पूर्व ही लिखा जा चुका था और इसका मुद्रण भी बहुत कुछ स्वामी जी के जीवनकाल में ही हो चुका था जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है :—

(क) महर्षि जी ने संवत् १६३१ वि० में 'पंचमहायज्ञ विधि' का प्रथम संस्करण बम्बई में मुद्रित कराया था। उसके पितृतर्पण प्रकरण में लिखा है—"···**श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं क्रियते तत् तर्पणम्**" (पृष्ठ २०, २१)

अक्रोधनः··· (मनु के दो श्लोक उद्धृत करके)

भावार्थ :—"अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषः श्रद्धया सत्याचारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्रद्धया देवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात्"—(पृष्ठ २१)

---

४३. पं० भगवद्दत्त बी० ए० द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" प्रथम संस्करण; पृष्ठ १००।

इससे स्पष्ट रूप से जीवित श्राद्ध का विधान किया है।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन आषाढ़ ११ संवत् १९३१ वि० से प्रारम्भ हुआ था। उसके लगभग ३ मास पीछे "पंचमहायज्ञविधि" का लेखन हुआ था। इससे स्पष्ट है कि उस समय महर्षि मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते थे।

(ख) महर्षि जी ने एक पत्र मुन्शी **समर्थदान** जी को लिखा जो उस समय वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक थे। पत्र इस प्रकार है :—

"मुन्शी **समर्थदान** जी, आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २९ अगस्त का लिखा आया। समाचार विदित हुआ। और जो तुमने रजिस्टर और दोनों की भाषा और सभा का कृत्य भेजा सो पहुँचा। इस भाषा को देखकर जैसा होगा वैसा लिखा जायगा।...आज यहाँ से २४८ से लेके २७८ तक 'सत्यार्थप्रकाश' और १८१० से लेके १८९५ तक ऋग्वेद के पत्रे भाषा बनाने के लिए भेजे हैं। पहुँचने पर ज्वालादत्त को दे देना और रसीद भेज देना। प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' के पत्रे २५० तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं सो ४८-४९-५० अंक घटे हैं। तुमको भ्रम न हो। परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहाँ २५० पृष्ठ है उसके अंत और २४८ पृष्ठ के आदि की संगति तुम मिला देना और २५१ पृष्ठ के आदि और जो अब २५० वाँ भेजा है उसकी सभी संगति मिला लेना। और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं।"...४४

—दयानन्द सरस्वती

जोधपुर (मारवाड़)
भाद्र वदी ३० संवत् १९४०

यह पत्र महर्षि जी ने अपने देहावसान से दो मास पूर्व लिखा था। यह पत्र निश्चय से सिद्ध करता है कि महर्षि जी के जीवनकाल में ही "सत्यार्थप्रकाश" के द्वितीय संस्करण के ग्यारह समुल्लास मुद्रित हो चुके थे।

(ग) "मुन्शी **समर्थदान** जी, आनन्दित रहो।

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेकर ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थप्रकाश' का भेजते हैं सम्भाल लेना। आश्विन वदी ८ सोमवार संवत् १९४० को 'संस्कार विधि' के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं पहुँचे होंगे और पहुँचने पर रसीद भेज देना।"...४५

—दयानन्द सरस्वती

जोधपुरराज मारवाड़
मिति आश्विन १३ शनि० संवत् १९४०

इस पत्र से यह स्पष्ट है कि महर्षि जी के जीवनकाल में ही 'सत्यार्थ-प्रकाश' ३४४ पृष्ठ मुद्रित हो चुका था; तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थप्रकाश' के तेरहवें समुल्लास में है। यह पत्र महर्षि जी ने अपनी मृत्यु से एक मास पूर्व लिखा था।

---

४४. वही, पृष्ठ ४८७।
४५. वही, पृष्ठ ५१२।

(घ) आश्विन वदी ८ सोमवार संवत् १६४० (२४ सितम्बर १८८३ ई०) मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"मुन्शी समर्थदान जी, आनन्दित रहो।

आज 'संस्कार विधि' के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं, संभाल के छपवाना।...और 'सत्यार्थप्रकाश' जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहाँ से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुँचते समय भेज देंगे।"......

जोधपुरराज मारवाड़।[४६]

दयानन्द सरस्वती

इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो गयी कि 'सत्यार्थप्रकाश' के संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपि महर्षि जी के निर्वाण से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी और १३ वें समुल्लास तक की प्रेसकापी महर्षि जी के निर्वाण से लगभग एक मास पूर्व मुद्रणालय में पहुँच गई थी।

अतः आपने प्रथम संस्करण से जो उद्धरण दिया है वह व्यर्थ है।

पृष्ठ ५३—यजुर्वेद अध्याय ३१ में 'पुरुषमेध' यज्ञ (जिसमें नरबलि दी जाती थी) का विवरण उपलब्ध होता है—भूतकालिक क्रियाओं में वहाँ नवम मंत्र में लिखा है :—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

(उस यज्ञार्थ पुरुष का जल छिड़क कर प्रोक्षण किया। उससे देवताओं और ऋषियों को पूजा अर्थात् उनके निमित्त उसकी बलि दी)

साथ के मंत्र में पुनः पूछा गया है कि जिस पुरुष की बलि दी गई उसका कौन-कौन सा भाग किस-किस को मिला (देखें दसवाँ मंत्र) १४वें मंत्र में पुनः स्पष्ट लिखा है। यज्ञ में पुरुष के मांस को हविः बनाया गया।

समीक्षा—'नरमेध' का सत्यार्थ ऊपर बतला दिया गया, पर आपको तो वेद से नरबलि सिद्ध करने का कुप्रयास करना है। आपने यजु० ३१वें अध्याय को समझा ही नहीं है। इधर-उधर के वाममार्गियों की टीकाओं को देख कर भ्रम में पड़कर जनता को भी पथ-भ्रष्ट करने लगे।

'पुरुषमेध' यज्ञ में नरबलि दी जाती थी यह आपका भ्रममात्र है। यजुर्वेद में ही 'पुरुषवध' का निषेध है :—

"इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुँ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुँ पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु" (यजु० १३।४७)

इस मंत्र में "इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्" इस वाक्य पर विशेष ध्यान देना

---

४६. वही, पृष्ठ ५०४।

चाहिए। इस वाक्य का अर्थ है कि "इस दो पैर वाले पशु की हिंसा न कर"। दो पैर वाले पशु से, यहाँ मनुष्य का ग्रहण है।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, वेदमूर्ति—"हे अग्ने ! तुम यज्ञ कर्म के निमित्त चयन किये गये हो। तुम सहस्र नेत्र वाले हो। इस दो पाँव वाले **पुरुष रूप** पशु की हिंसा मत करो।..."४७

आचार्य पं० गोपालप्रसाद कौशिक—(उव्वट महीधर भाष्य का अनुवाद करते हुए) :—"हे अग्ने ! सुख पाने के लिए बढ़े हुए सहस्र नेत्र वाले इन्द्र तू **दो पैर वाले मानव** और पवित्र फलप्रद जंगली गवादि पशु जीव को मत मारे।..."४८

जब यजुर्वेद के एक स्थल में पुरुषवध का निषेध है तब दूसरे स्थल में वध का आदेश कसे होगा ? वेदों में परस्पर विरोध नहीं होता, क्योंकि वेद अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान हैं।

आपने ३१।९ का अर्थ अशुद्ध किया है। सत्यार्थ देखिए :—

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती—"(तम्) उक्तम् (यज्ञम्) संपूजनीयम् (बर्हिषि) मानसे ज्ञानयज्ञे (प्र) प्रकर्षेण (औक्षन्) सिञ्चन्ति (पुरुषम्) पूर्णम् (जातम्) प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्त्तारम् (अग्रत:) सृष्टे: प्राक् (तेन) तदुपदिष्टेन वेदेन (देवा:) विद्वांस: (अयजन्त) पूजयन्ति (साध्या:) साधनं योगाभ्यासादिकं कुर्वन्तो ज्ञानिन: (ऋषय:) मन्त्रार्थविद: (च) ये।"

भावार्थ :—विद्वद्भिर्मनुष्यै: सृष्टिकर्त्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्य: पूजनीयश्च।

पदार्थ :—हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवा:) विद्वान् (च) और (साध्या:) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषय:) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रत:) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र, औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं (तम्) उसको तुम लोग भी जानो।

भावार्थ :—विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदय रूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें।"४९

श्री वैष्णव सम्प्रदाय के महात्मा स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज—

"तं यज्ञमिति। तमग्रतो जातं जातेभ्य: पदार्थेभ्य: पूर्वमेव वर्तमानं यज्ञं यजनीयं

---

४७. यजुर्वेद (सरल हिन्दी भावार्थ सहित) पृष्ठ ३१३ (१९६७ ई० संस्कृति संस्थान बरेली द्वारा प्रकाशित चतुर्थ संस्करण)

४८. यजुर्वेद (सरल हिन्दी के भावार्थ सहित) पृष्ठ २४३-२४४ (१९६८ ई० गंगा बुक डिपो, घीयामन्डी, मथुरा द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)

४९. "यजुर्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ७३६ (संवत् १९४६ वि० अजमेर)

पुरुषं पापनाशकं परमात्मानं बर्हिषि पवित्रे मनसि प्रौक्षन् प्रकर्षेणौक्षन् सिंचन्, भक्ति-जलेनोपासका इति भावः। तेन तदुक्षणदर्शनेन देवा अन्ये विद्वांसो ये च साध्याः सद्य एवोपासना पद्धति प्रविष्टा ये चर्षयो गतिमन्तो बुद्धिमन्तो वेदवेत्तारो वा तेपि तं पुरुषमयजन्त। इत एव परमेश्वरस्य मानसिकपूजायाः प्रारम्भः।"५०

आपके अर्थ से भी 'नर बलि' सिद्ध नहीं हो रही है। आपने परमेश्वर की मानसिक पूजा की चर्चा की है।

भावार्थ :—"उस पूजनीय पापनाशक, सबसे आगे प्रादुर्भूत पूर्ण परमेश्वर की विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में भक्तिरूपी जल से अभिषिक्त करते हैं, उपासना करते हैं। उसी परम पुरुष से विद्वान् और योगाभ्यासी साधना वाले ज्ञानी, ऋषि, वेदों के ज्ञाता बुद्धिमान् परमेश्वर की मानसिक पूजा प्रारम्भ करते हैं।"

आपने ३१।१४ का अर्थ किया है :—"यज्ञ में पुरुष के मांस को हविः बनाया गया।"

यह अर्थ भी अशुद्ध है। सत्यार्थ देखिए :—

"यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।"

—(यजु० ३१।१४, अथर्व० ७।५।४, ऋ० १०।९०।६)

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती :—"(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन परमात्मना (हविषा) होतुमादातुमर्हेण (देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (अतन्वत) तन्वते विस्तृणन्ति (वसन्तः) पूर्वाह्णः (अस्य) यज्ञस्य (आसीत्) अस्ति (आज्यम्) (ग्रीष्मः) मध्याह्नः (इध्मः) प्रदीपकः (शरत्) अर्द्धरात्रः (हविः) होतव्यं द्रव्यम्।"

भावार्थ :—यदा वाह्यसामग्र्यभावे विद्वांसो सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादि काल एव साधनरूपेण कल्पनीयः।

पदार्थ :—हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) मानस ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं। (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) पूर्वाह्ण काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्मः) मध्याह्न काल (इध्मः) ईन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है; ऐसा जानो।

भावार्थ :—जब वाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासना रूप मानस ज्ञानयज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधन रूप से कल्पना करने चाहिएं।"५१

---

५०. शुक्ल यजुर्वेद संस्कार भाष्येण सहितस्य ३१-३५ अध्यायाः, पृष्ठ ९ (राजनगर सोसाइटी, अहमदाबाद ७ द्वारा प्रकाशित, स० २०२२ वि०)

५१. "यजुर्वेद भाष्यम्" पृष्ठ ७४३

इस मंत्र का पूर्वार्ध अथर्व० ७।५।४ में भी पाया जाता है।

इस पर **श्री सायणाचार्य** का भाष्य देखिए :—

"दीव्यन्तीति देवा यजमाना:, पुरुषेण हविषा, यज्ञं पुरुषमेधाख्यं विस्तारितवन्तः। एवं पुरुषहविष्कयज्ञ इति यदस्ति, तस्मादोजीय अतिशयेनोजस्वि सारवदस्ति नु, विद्यते खलु, यद्विहव्येन विगत हविष्केण ज्ञानयज्ञेनेजिर इष्टवन्तः।"

भावार्थ :—देव का अर्थ यजमान है। उन्होंने पुरुष रूपी हवि से जो यज्ञ किया, उससे तो विना ही हवि के किया गया यज्ञ उत्तम है।"

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी :—पौराणिक होते हुए भी वाजसनेय संहिता में पुरुषमेध प्रकरण का अर्थ और कुछ मानते हैं* अतः यह दोषारोपण भी व्यर्थ सिद्ध हुआ और 'सरिता' के लेखक की वेदानभिज्ञता प्रकट हुई।

पृष्ठ ५३—"अथर्ववेद में मांस और शराब ऐसे प्रयुक्त हुए हैं कि उनसे तात्कालिक समाज में दोनों के मान्यता प्राप्त स्वरूप का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। साधारण बातचीत में उपमाएँ देने में ये दोनों सामान्यतया प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ 'तुम्हारा मन जैसे मांस में, जैसे शराब में रमता है, वैसे ही तेरा मन बच्चे में भी रमे'। (अथर्व० ६।७०।१)

समीक्षा :—अथर्ववेद में मांस, शराब से उपमा देने का तात्पर्य तो यह नहीं है कि इनके सेवन का आदेश है। देखिए पूरा मंत्र—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।

इसमें मांस, शराब और द्यूत क्रीड़ा तीनों को एक कोटि में रखकर निन्दनीय व वर्जनीय बताया गया है।

श्री ग्रिफिथ साहब ऋग्वेद मं० १० सू० ३४ मं० १३ का अंग्रेजी अनुवाद करते समय अथर्व० ६।७०।१ का उद्धरण देते हुए शराब को बुरा बतलाते हैं :—
"Its (of flesh) is disapproved as in a passage of the Atharva Veda where meat is classed with Sura of intoxicating liquor as a bad thing."

'वैदिक एज'। (Vedic age) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ के कुख्यात लेखक ने भी "Drink is condemned as leading to quarrels and as seducing men from the path of virtue like dicing and meat eating."

—(Atharva-vi-70-1 and Vedic Age, PP. 457-458, First edition in 1951 London.)

यह लिखकर स्वीकार किया है कि जुआ और मांस-भक्षण की तरह मद्यपान धर्म पथ से हटाने वाला और लड़ाई-झगड़े में प्रवृत्त करने वाला है।

---

*"वैदिक साहित्य" पृष्ठ ३६०,

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी—जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जुआ है उसी प्रकार पुरुष का मन स्त्री में (निहन्यते) निःसन्देह मारा जाता है। अर्थात् जिन व्यवहारों से मनुष्य का मन गिर जाता है, मारा जाता है या पतित हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं—मांस भक्षण, सुरापान, जुआ खेलना और व्यभिचार करना। इनसे मनुष्य पतित होता है इस कारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह 'वर्ग का निषेध' होने के कारण इनमें से किसी एक का पूर्ण निषेध करने से सब अन्यों का निषेध स्वयं हो जाता है। देखिए एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद १०।३४।१३.

"जूआ मत खेल, खेती कर" इस मंत्र में जूआ मत खेल—यह पूर्ण निषेध है, यह जूआ पूर्वोक्त मांस वर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध होता है तो तत्सम अन्य जो-जो उस वर्ग में परिगणित हों उन सबका निषेध स्वयं हो जाता है, इस पद्धति से पूर्वोक्त चारों का निषेध एकदम हो गया।..."[५२]

अतः इस मंत्र से मांस, मद्य, द्यूतक्रीड़ा तीनों का निषेध होता है।

अथर्व १८।४।२० का पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

"अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ।"

इसमें 'मांस' शब्द देख कर लेखक को भ्रम हो गया।

पं० क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी : "(अपूपान्) अपूपों (शुद्ध पके हुए भोजनों मालपूए, पूड़ी आदि) वाला, (मांसवान्) मननसाधक पदार्थों वाला (अर्थात् बुद्धि-वर्धक जैसे मीठे फल, बादाम, अक्षोट आदि वस्तुओं वाला) (चरुः) चरु (स्थालीपाक) (इह) यहाँ (वेदी पर) (आसीदतु) आवे। (लोककृतः) समाजों के करने वाले, (पथिकृतः) मार्गों के बनाने वाले (तुम लोगों) को (यजामहे) हम पूजते हैं, (ये) जो तुम (देवानाम्) विद्वानों के बीच (हुतभागाः) भाग लेने वाले (इह) यहाँ पर (स्थ) हो।

भावार्थ :—यजमान को योग्य है कि विद्वानों को सत्कारपूर्वक बुलाकर शुद्ध, सुगन्धित, पुष्टिकारक मोहनभोग, मालपूए आदि पदार्थों के स्थालीपाक से यज्ञ करे।

[पाद-टिप्पणी में]—(मांसवान्) अ० ६।६।(३) ५। मनेर्दीर्घश्च। उ० ३।६४ मन्माने—सप्रत्यो दीर्घश्च। मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन्त्सीदतीति वा—निरु० ४।३। मननसाधकेन बुद्धिवर्द्धकवस्तुना युक्तः।..."[५३]

पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ : "(अपूपवान् मांसवान् चरुः इत्यादि) अपूप वाला और मांस=गूदेवाला चरु यहाँ रखा जाय। (देवानां)

---

५२. **"गोमेध" (पूर्वार्ध) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ६४-६५**

५३. **"अथर्ववेद भाष्यम्" अष्टादशं काण्डम्, प्रथमावृत्तौ, पृष्ठ ६४-६५.**

देवों के निमित्त (ये) जो लोग (हुतभागः) उनके प्राप्त होने योग्य अंशों का प्रदान करते (स्थ) हैं उन (लोककृतः) लोक व्यवस्थापक पुरुषों और (पथि-कृतः) मार्ग निर्माण करने वाले उपकारी पुरुषों को (यजामहे) हम उक्त पदार्थ प्रदान करें।"

"मांसं वै पुरीषम्। श० ८।६।२।१४। मांसं सादनं। श० ८।१।४।५। एतद् ह वै परममन्नाद्यं यन्मांसम्। श० ११।७।१।३, अन्नम् उ पशोर्मांसम्। श० ७।५।२।४२"

अपूपम्—इन्द्रियमपूपः। ऐ० २।२४॥

चरु—ओदनो हि चरुः। श० ५।४।२।१।। परमेष्ठी वा एष यदोदनः। तै० १। ७।१०। ६। प्रजापतिर्वा ओदनः। श० १३।३।६।७॥ रेतो वा ओदनः। श० १३।१। १।४॥......इस सारे प्रकरण में सब पदार्थ सात्त्विक ही हैं इसलिए 'मांसं' शब्द से गोश्त का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत रसीले गुद्देदार सर्वश्रेष्ठ अन्न खाद्य ही को बतलाया है।"[५४]

पौराणिक पं० श्रीराम शर्मा आचार्य :—पिसे गेहूँ और प्राणिज द्रव्य से संयुक्त ओदन रूप चरु पश्चिम में रखा जाय। इस संस्कार किये गये प्रेत के लिए स्वर्ग-निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं।"[५५]

सायण भाष्य के आधार पर अनुवाद करते हुए भी पौराणिक पंडित ने मांस आदि का वर्णन नहीं किया है।

अथर्ववेद १८।४।४० पूरा मंत्र और सत्यार्थ :—

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥

श्री पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी : "[हे पितृगण !] (यम्) जिस (मन्थम्) मथने से प्राप्त हुए पदार्थ [नवनीत आदि] और (यम्) जिस (ओदनम्) भात आदि [सुसंस्कृत भोजन] को (ते) तेरे लिए और (यत्) जिस (मांसम्) मनन साधक वस्तु [बुद्धिवर्धक मीठे फल, बादाम, अक्षोट के गूदे, मींग] को (ते) तेरे लिए (निपृणामि) मैं भेंट करता हूँ। (ते) वे [भोजन पदार्थ] (ते) तेरे लिए (स्वधा-वन्तः) आत्मधारण शक्ति वाले, (मधुमन्तः) मधुर गुण वाले और (घृतश्चुतः) घी [सार रस] सींचने वाले (सन्तु) होवें।

भावार्थ—गृहस्थ लोग विद्वान् गुणी माता पिता आदि बड़ों की सेवा घृत दुग्ध आदि से किया करें। जिससे वे पितर लोग बलवान् रहकर उत्तम-उत्तम कर्म करने में समर्थ होवें।[५६]

---

५४. "अथर्व संहिता भाषाभाष्य" चतुर्थखण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १०७-१०८.
५५. "अथर्ववेद (सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित) द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण पृष्ठ ८२२-८२३
५६. "अथर्ववेद भाष्यम्" अष्टादशं काण्डम्, पृष्ठ ३५११-३५१२

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ :—"हे पुरुष ! मैं परमेश्वर (यं) जिस (मन्थम्) मथे हुए दही को (यम् ओदनम्) और भात को और (यत् मांसम्) जिस मनचाहे परम अन्न, फल आदि गूदेदार पदार्थ को (ते) तेरे लिए (निपृणामि) क्षुधा तृप्ति के निमित्त प्रदान करता हूँ (ते) वे समस्त पदार्थ (ते) तेरे लिए (स्वधावन्तः) अपने शरीरों को पुष्टि देने वाले, स्वभाव से शरीर योग्य, अन्न से बने, (मधुमतः) मधुर रस वाले और (घृतश्चुतः) घृत के समान तेज, वीर्य के देने वाले (सन्तु) हों।"[५७]

यदि 'मांस' शब्द ही रहने दिया जाय तब दूसरा अर्थ होगा:—

पं० प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड): "(यं ते मन्थम्) हे जीव ! तेरे शरीर में जिस मन्थनीय रक्त को (यमोदनम्) जिस शुक्ररूप सार पदार्थ को (यन्ते मांसम्) तथा जिस मांस को (निपृणामि) यथास्थान आवश्यकतानुसार नियुक्त करता हूँ। अतः उनके पोषण के वास्ते (ते स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतवन्तः) वे अन्नवाले रसवाले और स्नेहवाले पदार्थ (ते सन्तु) तेरे लिए हैं तू उनका उपयोग कर।

शिक्षा—मनुष्य के शरीर में रक्त, शुक्र और मांस ये तीन धातुएँ विशेषतः जीवनधारण के निमित्त हैं। इनके पोषणार्थ उत्तम अन्न रस और स्नेह वाले पदार्थों को सेवन करना चाहिए।"[५८]

अथर्ववेद १२।२।७ का पूरा मंत्र और सत्यार्थ:—

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स धर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥

पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी : "(यः) जिस (क्रव्यात्) मांस भक्षक (अग्निः) अग्नि [समान सन्तापक पुरुष] ने (नः) हमारे (गृहम्) घर में (प्रविवेश) प्रवेश किया है [सो] (इमम्) इस (इतरम्) दूसरे [उससे भिन्न शुभगुणी] (जातवेदसम्) ज्ञानवान् राजा को (पश्यन्) देखता हुआ (पितृयज्ञाय) पितरों [रक्षक विद्वानों] के सत्कार के लिए (तम्) उस [दुष्ट] को (दूरम्) दूर (हरामि) भेजता हूँ और (सः) वह [राजा] (परमे) बड़े उत्कृष्ट (सधस्थे) समाज में (धर्मम्) यज्ञ को (इन्धाम्) प्रकाशित करे।

भावार्थ—प्रजागण चतुर नीतिज्ञ राजा के सहाय से क्रूर सन्तापकारी जन को निकाल देवे, जिससे सत् पुरुषों के सद्गुण संसार में फैलें और विजय पाने से राजा की कीर्ति बढ़े।"[५९]

यही मंत्र ऋग्वेद मं० १० सूक्त १६, मंत्र १० में भी आया है।

---

५७. **"अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य" चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२०**
५८. **"यमपितृपरिचय" प्रथम संस्करण पृष्ठ २०८**
५९. **"अथर्ववेद भाष्यम्" द्वादशकाण्डम्, प्रथमावृत्तौ, पृष्ठ २७३६-२७३७**

पं० प्रियरत्नजी आर्ष अनुसन्धानकर्त्ता (स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्त्तण्ड):—(यः क्रव्यादग्निर्वो गृहं प्रविवेश) हे प्रेतहारो ! जो शवदहनाग्नि तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हुई है (इममितरं जातवेदसं पश्यम्) मैं इस दूसरी अग्नि को प्रयुक्त करता हुआ—होमाहुति द्वारा सम्पादन करता हुआ (तं देवं हरामि पितृयज्ञाय) उस क्रव्याद शवगन्धाग्नि को पृथक् करता हूँ जिससे आपका प्राण-सञ्चार सुखमय हो सके (स परमे सधस्थे घर्ममिन्वात्) वह शवगन्धाग्नि ऊपर आकाश सूर्य को लक्ष्य करके व्याप्त हो जावे ।

शिक्षा—चिताग्नि में होमाहुति देना प्रेतहारों के भीतर घुसी शवगन्धाग्नि के सम्पर्क को हटाती है जिससे उनके जीवन प्राण में खराबी नहीं आती किन्तु सूक्ष्म होकर ऊपर आकाश में शवगन्ध छिन्नभिन्न हो जाती है ।"[६०]

अतः अथर्ववेद में मांस-भक्षण की चर्चा नहीं है ।

पृष्ठ ५३-५४:—'शतपथ ब्राह्मण' में गोमेध यज्ञ का वर्णन है···। शतपथ ब्राह्मण (३-१-२-२१) में पुरोहितों के इस पारस्परिक विवाद पर कि मांस बैल का खाना चाहिए या गाय का, याज्ञवल्क्य निर्णय देते हैं, दोनों में से जो नरम हो, खा लेना चाहिए ।

समीक्षा—अन्न को 'गोमेध' शतपथ में कहा गया है जिसकी चर्चा पीछे हो चुकी है ।

शतपथ ब्राह्मण में प्रक्षेप :—

"ब्राह्मणों में बहुत प्रक्षेप भी है । कात्यायन श्रौत ७।५३ पर टीका लिखता हुआ याज्ञिकदेव शतपथ ब्राह्मण ३।१।२।२१ के विषय में लिखता है कि याज्ञवल्क्य की बछड़े के मांस को खाने की इच्छा को कहने वाला ब्राह्मण वाक्य धर्म के विरुद्ध है । अथवा यह किसी का मिलाया हुआ है ।"[६१]

श्री शिवस्वामी सरस्वती जी महाराज (प० शिव शर्मा जी महोपदेशक):—

"कात्यायन श्रौत सूत्र का टीकाकार ७।५।३ की टीका करते हुए लिखता है कि—शतपथ ३।१।२।२१ के विषय में याज्ञवल्क्य के बछड़े के मांस खाने वाला ब्राह्मण वाक्य धर्म विरुद्ध है । किसी का मिलाया हुआ है । वह वाक्य यह है—"तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो अश्नाम्येवाहमंसलं चेद् भवतीति । ३।१।२।३१ पृष्ठ १२९ (भाषा छोड़ता हूँ) ।"[६२]

---

६०. "यम-पितृपरिचय" पृष्ठ ६०

६१. पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० कृत "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" भाग द्वितीय "ब्राह्मण और आरण्यक" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७२ [सन् १९२७ ई० लाहौर संस्करण]

६२. "शास्त्रार्थ महारथी" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २७०

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्त्तण्ड भी प्रक्षेप मानते हैं ।*

यदि इस स्थल को क्षेपक न माना जाय तब इसका अर्थ कुछ और ही होगा :—

'शतपथ ब्राह्मण' का पूरा स्थल :—

"...स धेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धेन्वनडुहौवाऽइदं सर्व्वं विभृतस्ते देवा अब्रुवन्धेन्वनडुहौ वाऽइदं सर्वं विभृतो हन्त यदन्येषां वयसां वीर्यं तद्धेन्वनडुहयोर्दधामेति स यदन्येषां वयसां वीर्यमासीत्तद्धेन्वनडुहयोरदधुस्तस्माद्धेनुश्चैवानड्वांश्च भूयिष्ठं भुंक्तस्तद्धैतत्सर्वाश्यमिव यो धेन्वनडुहयोरश्नीयादन्तगतिरिवतंत ँहाद्भुतमभिजनितोर्जायायै गर्भं निरवधीदिति पापमकदिति पापी कीर्तिस्तस्माद्धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्तदुहोवाच याज्ञवल्क्योऽश्नाम्येवाह मंसलं चेद्भवतीति ।"

—[शतपथ ब्रा० ३ कां० १ प्र० २ ब्रा० २१ कं०]*

अथ—"यह (यजमान) गाय का और बैल का न खावे । गाय और बैल ही इस संसार का धारण करते हैं । देवताओं ने भी कहा कि गाय और बैल ही इस संसार को धारण करते हैं । ओ हो ! जो दूसरे पक्षियों का पराक्रम गाय व बैल में स्थापन करता हूँ तब जो दूसरे पक्षियों का पराक्रम था वह उन्होंने गाय और बैल में डाल दिया । इसलिए गाय व बैल सबसे अधिक खाते हैं । वह सचमुच सर्वभक्षी है, जो गाय व बैल को खा जाय । यह बड़ा अद्भुत कार्य है कि स्त्री में गर्भ धारण करवाया । पापी की कीर्ति है इसलिए गाय व बैल का न खाये । इस पर याज्ञवल्क्य बोले कि यदि वह मोटे कंधेवाला (बलवर्धक) होगा तो मैं खाऊँगा ।"+

यह शाब्दिक अनुवाद है । यहाँ अध्याहार द्वारा 'मांस' शब्द समझा जाता है।

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री इसका अनुवाद करते हुए बैल का मांस खाना मानते हैं ।[६३]

'शतपथ ब्राह्मण' ३।१।२।२१ का स्पष्टीकरण :—

पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार विद्यामार्त्तण्ड लिखते हैं :—

"इसका शब्दार्थ इस प्रकार है—वह (यजमान) गाय का और बैल का न खावे ।...इस पर याज्ञवल्क्य बोले मैं तो खाऊँगा यदि वह बलबर्धक होगा ।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सारे सन्दर्भ में मांस का शब्द कहीं नहीं, यह मांस शब्द कहाँ से आ टपका ।

---

*"वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८५

+"शतपथ ब्राह्मण श्रीमत्त्रयीभाष्यकार सायणाचार्य विरचित वेदार्थ प्रकाशाख्य भाष्य समेतम् । तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम काण्डात्मक, द्वितीयो भागः पृष्ठ १३ [सन् १९४० ई० में श्री लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण बम्बई द्वारा प्रकाशित]

६३. "भारतीय संस्कृति का इतिहास" पृष्ठ ४०२ [सन् १९५८ ई० रस्तोगी एण्ड कम्पनी मेरठ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

अब यदि अव्याहार द्वारा मांस शब्द लाना ही है तो इस पर एक बड़ा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मांस के रूप में तो गाय बैल एक से हैं इसमें स्त्रीलिंग-पुल्लिंग का भेद क्या ?

अब थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जावे कि गोमांस के स्वाद के विशेषज्ञ गाय और बैल के मांस में कोई भेद कर सकते हैं तो भी 'गव्यम् मांसम् नाश्नीयात्' कहने से काम चल सकता था। यह 'धेन्वै अनडुहश्च' गाय का और बैल का दोनों अलग-अलग क्यों कहे गये ?

इससे स्पष्ट पता लगता है कि इस वाक्य के समझने में भयङ्कर भूल हुई है।

इस वाक्य के समझने के लिए पहिले इसका प्रसंग देखना होगा। यह सोमयाग में पढ़ा हुआ वाक्य है। उपवास के प्रसंग में शतपथ के आरम्भ में भी कहा गया है कि उपवास का सम्बन्ध खाने न खाने से कुछ नहीं। उपवास का अर्थ तो हाज़री देना है। सो यज्ञ में जब कोई देवताओं की सेवा में हाज़िर हो उनके उप अर्थात् समीप बस रहा हो उस समय उनको खिलाये बिना खाना अर्थात् यज्ञ समाप्ति से पहिले खाना देवों का अपमान है। इस पर प्रश्न उठा कि यदि बिल्कुल भूखा रहेगा तो यज्ञ कैसे करेगा ? सो कुछ खाना तो अवश्य चाहिए सो जो खाया भी न खाये के बराबर हो अर्थात् जिसकी हवि ग्रहण नहीं करते वह पदार्थ अर्थात् कोई जंगली फल वा कन्द खा ले जिससे यज्ञ भी होता रहे और देवों का अपमान भी न हो।

वही बात यहाँ दोहराई गई कि गाय का अर्थात् दूध के बने पदार्थ मक्खन, मलाई, दही, मावा आदि न खावे तथा बैल का अर्थात् खेतों से उत्पन्न पदार्थ न खावे। इस पर याज्ञवल्क्य बोले कि सोमयाग लम्बा यज्ञ है इसलिए यदि दुर्बलता अनुभव हो तो कोई पुष्टिकारक पदार्थ जो भारी न हो थोड़ा सा खाने से काम दे जावे खा लेने में कोई हर्ज नहीं। जहाँ वाक्य में मांस का गन्ध भी नहीं वहाँ मांस का शब्द घुसेड़ना फिर स्त्रीलिंग पुल्लिग गाय बैल दोनों के पृथक् ग्रहण का कोई तात्पर्य न हो वह अर्थ कैसे ठीक हो सकता है ? बलिहारी है इस बुद्धि की ! भला हम रोज़ बोलचाल में यही व्यवहार देखते हैं। जब कोई लड़की ससुराल में जावे और उस घर के लोग शिष्टाचारवश आग्रह करने लगें कि भोजन खा लीजिए तो उस समय प्रायः कहा जाता है कि भाई, बेटी का खाने का धर्म नहीं, हम बेटी का नहीं खाते तो क्या वहाँ यह अर्थ लिया जायगा कि हम बेटी का मांस नहीं खाते ?

इस प्रसंग में 'ऐतरेय ब्राह्मण' का एक प्रकरण और लीजिए।

सर्वाभिर्वा एव देवताभिरालब्धो भवति यो दीक्षितो भवति तस्मादाहुर्न दीक्षितस्याश्नीयादिति। स यदग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतानिति। वपायै यजति सर्वाभ्य एव तद्देवताभ्यां यजमानम् प्रमुञ्चति तस्मादाहुर-शितव्यं वपायां हुतायां यजमानो हि स र्तीह भवति।

—"ऐतरेय ६ खण्ड, ९ अध्याय"

जो सोमयाग में दीक्षित होता है, वह अपने आपको सम्पूर्ण देवताओं के समर्पण कर देता है। इसलिए दीक्षित का न खावे सो वह जब 'अग्नीषोमावमुञ्चतम् गृभीतान्' इस याज्या द्वारा वपाहोम, अर्थात् विश्वविद्यालय में शारीरिक व्यायाम द्वारा सारी चर्बी शरीर के सुडौल बनाने तथा मस्तिष्क निर्माण में लगे। व्यर्थ शरीर में मोटापन उत्पन्न न करे इसका पूर्ण प्रबन्ध कर लेता है तब वह सब देवताओं के बन्धन से मुक्त हो जाता है उनकी सेवा में कृतकृत्य हो जाता है उसके पश्चात् उसकी दशा साधारण यजमान की हो जाती है। इसलिए वपाहोम के पश्चात् दीक्षित के घर का भी खा लेना चाहिए। यहाँ शब्द है 'दीक्षितस्य नाश्नीयात्' हम यहाँ इस नकली सायण से पूछना चाहते हैं कि यहाँ 'दीक्षितस्य मांसं नाश्नीयात्' इस प्रकार मांस का अध्याहार क्यों नहीं किया गया ? यहाँ तो यह हज़रत लिखते हैं कि 'दीक्षितस्य गृहे नाश्नीयात्' सो यह क्या विचित्र लीला है ! 'धेन्वै अनडुहश्च' के सम्बन्ध में तो 'मांसम्' आ गया और दीक्षित के सम्बन्ध में 'गृहे'। इसी को देखकर महाभारत में कहा है कि "धूर्त्तैः प्रवर्त्तितम् चक्रम्।"

हमने नकली सायण इसलिए कहा कि परम विद्वान् सायण न ऐसी मूर्खता कर सकता है न ऐसी धूर्त्तता। आर्य जाति उठ ! वेद को इन धूर्तों से बचा।"[६४]

प्रसिद्ध पौराणिक पं० दीनानाथ जी शास्त्री 'शतपथ में पुरोहित का गवाशन निर्मूल' शीर्षक देकर लिखते हैं :—"...जब कि इस कण्डिका में 'मांस' का नाम नहीं ; तब इस प्रकार का अर्थ प्रतिपक्षी कैसे कर सकते हैं ? अथवा वह अर्थ माना भी जावे ; किन्तु जब श्रुति गाय वा वृषभ के अशन का निषेध उपपत्ति देकर कर रही है, वैसे व्यक्ति को गर्भ-हत्यारा, सर्वभक्षी और पापी कहती है, तो गाय-बैल के खाने का तो प्रतिपक्षी के अनुसार भी निषेध सिद्ध हो गया। इसी को अनुसृत करके 'कात्यायन श्रौतसूत्र' में भी कहा है—"धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्' (७।२।२२) इसका अर्थ कर्कभाष्य में इस प्रकार किया है—"धेन्वडुहयोमांसं नाशितव्यम्" तब यह जो वादी ने प्रश्न उठाया है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए वा गाय का—यह तो बात गलत तथा उसकी गढ़ी हुई निकली।

यहाँ प्रकरण ही भिन्न है। श्री सायणाचार्य ने उसे स्पष्ट कर दिया है। वह यह है कि जब यजमान क्षौर कराकर स्नान करके वस्त्र पहिरे, तब अध्वर्यु उसका शाला में प्रवेश कराये; तब प्रवेशकर्त्ता यज्ञ दीक्षा की पूर्त्यर्थ उपवास करे ; तब गोदुग्ध से निर्मित मलाई-रबड़ी आदि तथा बैल से कृष्ट अन्नादि न खावे। यहाँ

६४. **"किसकी सेना में भरती होंगे ? कृष्ण की या कंस की" पृष्ठ २७ से २९ तक [सन् १९५३ ई०, प्रभाताश्रम कार्यालय, डा० जानी, जि० मेरठ द्वारा प्रकाशित]**

श्रीसायण के शब्द यह हैं—

'अस्मापि (शालाप्रवेश-कर्तुः । अशनकालत्वाद् अत्र अशने कञ्चिद् नियममाह —धेन्वै-धेनोः क्षीरादिकम्' अनडुहसम्बन्धि कर्षणसाध्यमित्यर्थः, तदुभयं नाश्नीयात्। ...तद् अश्नतः सर्वाशिनं भवति, तस्य च जाया गर्भ-सम्भवे सति तत् सर्वाशिनं तं रेतोरूपेण परिणतं गर्भं हिंस्यात् तत् पापकीर्तिः स्यात् । तद् उभयोः (धेन्वनडुहयोः) (पायसम्) (च) नाश्नीयात् । तत् याज्ञवल्क्य पक्षमाह चेत् यसमाद् उभया-[धेन्वनडुहा-] न्नाशने शरीरम् अंसलं [बलवद्] भवति, तस्मात् तयोरन्नमश्नीयामेव' ।"

उक्त कण्डिका में 'धेन्वै' में षष्ठी अर्थ में चतुर्थी [२।३।६२ इस कात्यायन के वार्तिक से] है ; यहाँ द्वितीया नहीं है, जोकि प्रतिपक्षी द्वितीया का अर्थ करते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि यहाँ याज्ञवल्क्य का गोदुग्ध से निष्पन्न पायस आदि तथा बैल से कृष्ट अन्न का अपने लिए खाना कहा है जो शाला प्रवेश के लिए निषिद्ध था; तब याज्ञवल्क्य के ऊपर भी कोई दोष नहीं पड़ता ।..."६५

पं० जयदेव जो वेदाचार्य एम० ए०, का भी विचार पं० बुद्धदेव जी विद्यमार्तण्ड व पं० दीनानाथ शास्त्री के सदृश है* अतः 'शतपथ ब्राह्मण' से 'गोमांस भक्षण' सिद्ध करना भी लेखक का वृथा प्रयास सिद्ध हो गया ।

पृष्ठ ५४—"वेदों के एक पुराने भाष्यकार महीधर ने अपने भाष्य में लिखा है कि गोमेध यज्ञ में मारी गाय के रक्त व हड्डी से दूध और कपूर बन जाते हैं...।"

समीक्षा—'महीधर' एक वाममार्गी वाराणसी का निवासी था जिसने यजुर्वेद का अश्लील तथा असंगत भाष्य किया है, क्योंकि वेदों में गोहत्या का सर्वथा निषेध है । दूध व कपूर बन जाने की बात असंगत, तर्कहीन तथा प्रमत्त प्रलाप ही है । वेद में आया है—

"**यजमानस्य पशून्पाहि**" (यजु० १।१) =यजमान (यज्ञ करने वाले) के पशुओं की रक्षा कर ।

"**द्विपादव चतुष्पात्पाहि**" (यजु० १४।८) =हे प्रभो ! आप द्विपाद् (मानव) व पशुओं की रक्षा कीजिए ।

"**शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे**—[यजु० ३६।८]

"वह परमात्मा (नः) हमारे लिए (शं) कल्याणकारी हो और (द्विपदे) दो पगवाले मानवों व पक्षियों तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले पशुओं के लिए (शं) कल्याणकारी हो ।

ऋ० १०।८७।१६; ८।१०१।१५; अथर्व० १०।१।२९; यजु० १३।४९; ३०।१८ आदि मंत्रों में स्पष्ट गोहत्या का निषेध है ।

---

६५. "**श्रीसनातनधर्मालोक (६) पृष्ठ ३७७, ३७८ [सं० २०१६ प्रथम संस्करण, दिल्ली]**

***"वेद और मांस विधान" पृष्ठ ३८ से ४० तक ।**

पृष्ठ ५४— "निरुक्त के प्रथम अध्याय से हमें एक और परस्पर विरोधी एवं आत्म व लोकप्रवन्धक बात पता चलती है, वहाँ एक वेद विरोधी कहता है, "वेद और उसके विधान सदोष हैं क्योंकि जब यज्ञ में पशु मारा जाता है तो जो मंत्र तब पढ़ा जाता है उसका अर्थ होता है—'हे खड्ग, इस पशु को मत मार।"

इस आक्षेप का उत्तर देते हुए वेदों के मर्मज्ञ यास्क ने लिखा है :

आम्नायवचनादहिंसा प्रतीयेत (वेदों का आदेश ऐसा ही है, अतः यह अहिंसा ही है),……उक्त स्थल पर भाष्य करते हुए छज्जूराम शास्त्री, विद्यासागर ने प्राचीन उक्ति उद्धृत की है; "या वेद विहिता हिंसा न सा हिंसा प्रकीर्तिता, अर्थात् जो वेदों में कत्ल व गारत है, उसे कत्ल व गारत नहीं कहा जा सकता।"

समीक्षा—लेखक ने निरुक्त के स्थल को छल कपट के साथ प्रदर्शित करने का कुप्रयास किया है। कौत्स जैसा वेदविरोधी आक्षेप कर रहा है और यास्क ने उसका समाधान किया है। उसने यह आरोप लगाया है कि यजु० ६।१५, यजु० ४।१ के मंत्र असंगत अर्थ वाले हैं। जैसे, यज्ञकर्ता पशु को काटता हुआ कहता है 'ओषधे त्रायस्वैनं, स्वधिते मैनं हिंसीः' मंत्र का अर्थ तो यह प्रतीत होता है कि हे ओषधि ! तू इसकी रक्षा कर; और हे खड्ग ! तू इसको मत मार; परन्तु इसको उच्चारण करके पशु का पेट काटा जाता है। इस प्रकार अर्थ तथा क्रिया में परस्पर असमानता तथा विरोध होने के कारण पता लगता है कि वेद मंत्र अनर्थक हैं [निरुक्त अ० १,पाद ५]

कौत्स ने अपने काल की प्रथा के अनुसार आक्षेप किया कि हिंसा करता हुआ 'त्रायस्व तथा मा हिंसी' कहता है। इस पर यास्क ने सीधा उत्तर दिया—"जो यह कहा कि मंत्र असंगतार्थक हैं, सो वेद के वचन से वहाँ अहिंसा जाननी चाहिए।

यजु० ६।१५ के जिस मंत्र को बोलकर अश्व का पेट काटा जाता है, वह ठीक नहीं। वेद-वचन से जब स्पष्टतया अहिंसा की प्रतीति होती है, तो जो उसके विपरीत कर्म करता है वह दोषी है न कि वेद-मंत्र।

इसी प्रकार यजु० ४।१ में भी 'ओषधे त्रायस्व…' वचन आता है। प्राचीन ऋषियों ने इस वचन का विनियोग मुण्डन संस्कार में किया है। 'ओषधे त्रायस्व' का उच्चारण करके केशों को कुश-तृण से बांधा जाता है कि जब केश काटे जावें तो उस्तरा उन कुश-तृणों पर टिके और सिर में क्षत न हो।…वेद वचन से केशों के काटने को हिंसा नहीं समझना चाहिए।

पं० छज्जूराम शास्त्री का अनुवाद ठीक है क्योंकि वेद मंत्रों का तात्पर्य अहिंसा ही है। पं० चन्द्रमणि जी 'विद्यालङ्कार' [६६]; स्वामी ब्रह्ममुनि जी विद्यामार्तण्ड',[६७];

---

६६. "वेदार्थ दीपक निरुक्तभाष्य" पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७५-७६

६७. 'निरुक्त सम्मर्शः" पृष्ठ ५२-५३ [प्रथम संस्करण, मार्च १९६६ ई०;]

पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० [६८] तथा पं० छज्जूराम शास्त्री + पं० भगीरथ शास्त्री [६९] प्रभृति भाष्यकारों व अनुवादकों ने ऐसा तात्पर्य लिखा है। अतः यह प्रयास भी व्यर्थ ही है।

पृष्ठ ५४ "बृहदारण्यकोपनिषद् (६-४-१८) में लिखा है : अथ य इच्छेत्पुत्रो मे······(अर्थात् जो यह चाहे कि मेरा पुत्र सभाओं में वाग्मी और सब वेदों में पारंगत तथा शतायु हो, उसे चाहिए कि वह अपने पुत्र को बैल वा सांड का मांस पकाकर घी और भात मिलाकर खिलाएँ)···

समीक्षा—बृहदारण्यकोपनिषद् से 'गोमांस'-भक्षण का वृथा प्रयासः—

"अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पंडितो विजिगीथः समितिंगमः शुश्रूपितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीत् सर्वमायुरियादिति मां सौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्यीयातामीश्वरौ जनयित वा औक्षेण वार्षभेण वा।"—[बृहदारण्यकोपनिषद् ६।४।१८]

इसका वास्तविक अर्थ यों है—

(क) इसके बाद (य इच्छेत्) जो कोई इच्छा करे (मे पुत्रः पंडितः) मेरा पुत्र पंडित (विजिगीथः) विजयी (समितिं गमः) सभाओं में जाने योग्य सभ्य (शुश्रूपितां) सुशिक्षित श्रवणेच्छाजनक (वाचं) वाणी का (भाषिता) बोलनेवाला (सर्वान्वेदान् अनुब्रवीत्) सब वेदों को पढ़े पढ़ावे (सर्वं आयुः इयात्) सम्पूर्ण आयु को भोगे वा इस प्रकार [जायेत] उत्पन्न होवे [सर्पिष्पन्तम्] घृतयुक्त [माषौदनं] उड़द और चावल को [पाचयित्वा] पकवाकर [ऋषभेण] अष्टवर्गोक्त ऋषभक् नामक महौषधि के साथ [अश्नीयाताम्] स्त्री पुरुष खावें तो [इति] इस [औक्षेन] ऋषभक महौषधि के निषेक प्रयोग से [ईश्वरौ] दोनों समर्थ होते हुए वे अवश्य [वा] ऐसा [जनयतः] उत्पन्न करते हैं।"[७०]

(ख) "जो चाहे कि मेरा पुत्र पंडित हो, प्रख्यात हो, सभा सोसाइटियों में जाने वाला हो, प्रियवाणी बोलनेवाला हो, सब वेदों का ज्ञाता हो, पूरी आयु भोगे, तो माष अर्थात् उड़द के साथ चावल पकवाकर पति पत्नी दोनों खावें। ऐसा करने से वे दोनों ऐसा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं जो शरीर में बैल के समान और ज्ञान में ऋषियों के समान होता है। इस स्थल में 'मांसौदन' की जगह 'माषोदन' पाठ ठीक है क्योंकि इस सारे प्रकरण में चावल, घी, दही, तिल आदि का वर्णन है। दही, घी,

---

६८. "निरुक्त शास्त्रम्" भाषार्थ तथा भाषाभाष्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५३-५४

६९. "निरुक्तम्" पृष्ठ ४६-४७ [सन् १९६३ ई० प्रथम संस्करण, मेहरचन्द लक्ष्मणदास अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज, दिल्ली-६]

७०. "वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४५, ४६ में पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ, काशी का अर्थ।

चावल, तिल आदि के सिलसिले में उड़द तो प्रकरणसंगत है, मांस सर्वथा असंगत है।[७१]

यहाँ पर 'मांसौदन' 'औक्षणेन' और 'ऋषभेण' इन पदों को देखकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं।

गर्भाधान के समय वैद्यक शास्त्र किन वस्तुओं के खाने तथा किन वस्तुओं के न खाने का विधान करता है।

'गर्भोपघातकरास्त्विमे भावाः...न रक्तानि बासांसि विभृयात् न मदकराणि चाद्यात् न अभ्यवहरेत् न यानमवरोहेत् न मांसमश्नीयात् सर्वेन्द्रियप्रतिकूलांश्च भावान् दूरतः परिवर्जयेत्। [चरक शा० स्थान अ० ४]

ये पदार्थ गर्भ के हानि करने वाले हैं—रक्त कपड़ा पहनना, मदकारक वस्तुओं का सेवन, मांस भक्षण, यान पर चढ़ना इसलिए गर्भाधान में इनका सेवन न करें।

ततो पराह्णे पुमान् मांसं ब्रह्मचारिणी तैलस्निग्धः सर्पिक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मांसं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहाराम् नारीमुपयाद्रात्रौ सामादिभि विश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यां दशम्यां द्वादश्यां च उपेयादिति पुत्रकामः। —[सुश्रुत, शरीराध्याय २]

अर्थ :—गर्भाधान करने वाला महीने भर तक ब्रह्मचारी रहे। पुरुष गर्भाधान के दिन अपराह्ण में घी से स्निग्ध, घी और दूध के साथ शाली चावल के भात को खाकर एक मास तक ब्रह्मचारिणी रहने वाली, तिल तैल से स्निग्ध, तैल और उड़द प्रधान आहार की हुई स्त्री को गर्भ की हानिकारक बातें समझा बुझा देने पर सब तरह से प्रेमोत्पादन करके चतुर्थी, षष्ठी, दशमी, द्वादशी में पुत्र की इच्छा से गमन करे।

चरक शा० स्थान० ८ में गर्भाधान में उड़द ही का उल्लेख है :—

"मधुरौषधसंस्कृताभ्यां घृतक्षीराभ्यां पुरुषं स्त्रियं तु तैलमाषाभ्याम् ॥"

अर्थात्—वर्गोक्त मधुर ओषधियों से संस्कार किये घृत और दुग्ध से पुरुष को, तैल और उड़द से स्त्री को गर्भाधान के योग्य करे।

"यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥"

—[अथर्व० ३ सू० २३ मंत्र ४]

अर्थ—वीर्य सेवन में समर्थ, श्रेष्ठ नर तू आरोग्यवर्द्धक ऋषभ के बीज की सहायता से पुत्रोत्पन्न कर और भविष्य में माता कही जाने वाली स्त्री को पुत्रवती और स्तनों में खूब दूध वाली होने दे।

---

७१. प० सत्यव्रतजी सिद्धान्तालंकार कृत "धारावाही हिन्दी में सचित्र एकादशोपनिषद्" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५०५।

यहाँ स्पष्ट गर्भाधान के समय ऋषभक ओषधि का सेवन करने के लिए आदेश है, न कि बैल खाने का।

यहाँ "मांसौदन" शब्द नहीं, वरन् "माषौदन" है। एक बार अशुद्ध मुद्रित हो गया तो वैसा ही अशुद्ध मुद्रित होता रहा।

"माषौदन" के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के विचार :—

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ लिखते हैं :–"माषौदन" सबसे पहले एक महान् प्रमाद बहुत दिनों से चला आता हुआ प्रसिद्ध होता है। मांसौदन शब्द यहाँ नहीं चाहिए किन्तु "माषौदन" अर्थात् माषौदन के स्थान में मांसौदनम् लेखकों के भ्रम से वा किसी मांसप्रिय विद्वान् के कर्तव्य से उस प्रकार का परिवर्तन हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि श्रीमन्थ कर्म में दश प्रकार के अन्न के नाम आये हैं, वे ये हैं व्रीहि, यव, तिल, माष, अणु, प्रियंगु, गोधूम, मसूर, खल्व और खलकुल और इन दस अन्न और सर्वौषध को मिला कर मन्थ बनाया जाता है और उसके विधिपूर्वक ग्रहण से यहाँ तक फल कहा गया है कि सूखे वृक्ष के ऊपर भी यदि यह मन्थ रक्खा जावे, तो उसमें पत्ते लग जायें, इत्यादि वर्णन इसी उपनिषद् के षष्ठाध्याय के तृतीय ब्राह्मण में देखिए। यहाँ पर देखते हैं कि तिल शब्द के बाद माष शब्द आया है। इसी प्रकार "तिलौदन" के पश्चात् "माषौदन" आना चाहिये, न कि "मांसौदन' क्योंकि १७ वें खंड में तिलौदन शब्द आया है अतः १८ वें खंड में अवश्य "माषौदन"चाहिए। पूर्व में भी क्रम देखते हैं कि क्षीरौदन, दध्योदन और उदोदन शब्द आए हैं। अब क्षीर, दधि और अन्न को त्याग झट मांस का विधान कर देना यह असंगत प्रतीत होता है, अतः यहाँ माषौदन ही शब्द है, यह सिद्ध होता है "माष" उड़द को कहते हैं।"[७२]

पं० जे० पी० चौधरी जी काव्यतीर्थ लिखते हैं :—"गर्भाधान के समय "माषौदन" चाहिए, न कि मांसौदन जो; गर्भाधान में सर्वथा वर्जनीय है। पुस्तक में एक बार जो अशुद्ध छप गया तो छप गया, कोई उस पर ध्यान देकर शुद्ध नहीं कर देता।[७३]

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ से दिनांक ३०।१०।१९४३ ई० को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा स्वर्ण जयन्ती, लाहौर के अवसर पर मैंने इस सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने कहा था कि मेरा सिद्धान्त है कि वहाँ पाठभेद है, मांस नहीं वरन्, माष, शब्द है।

उसी पर दिनांक ३१।१०।१९४३ को स्वामी अभेदानन्द जी महाराज व विद्या-

---

७२. **"बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यम्" पृष्ठ ७७६ (संवत् १९६८ में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित प्रकाशित, प्रथमावृत्तिः)**

७३. **"वेद और पशुयज्ञ" पृष्ठ ४५**

वारिधि व्याकरणाचार्य विजयमित्र जी शास्त्री, महोपदेशक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर के सामने वैदिक गवेषक पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० से इस सम्बन्ध में पूछा, तो उन्होंने भी कहा था कि वहाँ माष शब्द चाहिए।

पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार भूतपूर्व आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी लिखते हैं—इसका अर्थ कई विद्वानों ने यह किया है कि माता पिता माँस और चावल पकवा कर औक्षण से वा आर्षभ से घृत सहित खायें अर्थात् बैल का मांस खायें। इसका अर्थ करने का कारण यह है कि 'मांसौदन' शब्द में मांस शब्द आया है। परन्तु इस सारे प्रकरण को आगे-पीछे से देखें तो क्या माँस की बात ठीक जंचती है ? सारे प्रकरण को पढ़ जायें तो तिल चावल घृत के सिवाय किसी और वस्तु का कहीं ज़िक नहीं, एकाएक मांस शब्द आ गया है। असल में 'माष' की जगह किसी लेखक की गलती से 'मांस' शब्द लिखा गया है। उस समय के लेखकों की गलतियाँ आजकल छापेखाने के भूतों की गलतियाँ (Printers devil) कहातीं हैं। चावल के साथ माष अर्थात् उड़द की संगति तो स्पष्ट है, मांस की कोई संगति नहीं बैठती। शुभ कार्यों में आजकल की परम्परा तिल चावल माष के मिलने की है तिल चावल के साथ माँस मिलने की तुक कहाँ बैठती है !"[७४]

महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी लिखते हैं :—जो यह चाहे कि मेरा पुत्र पंडित ही वह मांस, 'माष—चिकने मांसल—उड़दों के साथ पके हुए चावलों को उक्ष वा ऋषभ औषध के रस के साथ खाये और जो उक्त वाक्य में मांस शब्द की आशंका की जाती है, जो किसी जीव के मांस का अर्थ देता है औषध का नहीं इसका उत्तर यह है कि इससे पूर्व प्रकरण अन्न या औषध का ही है।"[७५]

आचार्य रामदेवजी गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी भी उक्ष और ऋषभ काकड़ासींगी नाम महौषधि का नाम लिखते हैं।[७६]

पांडेय पं० श्रीरामनारायणदत्त जी शास्त्री 'राम' : अपने "वेदों और उपनिषदों में मांसभक्षण और अश्लीलता नहीं है" शीर्षक लेख में लिखते हैं—

"उदाहरण के लिए वृहदारण्यक उपनिषद् के ६।४।१८ वें मंत्र पर दृष्टिपात कीजिए। वहाँ सुयोग्य और विद्वान् पुत्र उत्पन्न करने के लिए दम्पती को औक्ष अथवा आर्षभ के साथ पकायी हुई खिचड़ी खाने का आदेश किया गया है। प्रायः मूंग या उड़द की दाल मिला कर ही खिचड़ी बनती है। मूंग की खिचड़ी को 'मुद्गौदन' और उड़दमिश्रित खिचड़ी को माषौदन कहते हैं। इस माषौदन को संभवतः किन्हीं मांस-

७४. "धारावाही हिन्दी में सचित्र एकादशोपनिषद्" प्रथमसंस्करण, भूमिका पृष्ठ १३।
७५. "वैदिक काल का इतिहास" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ५५
७६. "भारतवर्ष का इतिहास वैदिक तथा आर्य पर्व तृतीयावृत्ति पृष्ठ १८८।

प्रेमियों ने मांसौदन कर दिया है। यदि किसी का यही आग्रह है कि वहाँ 'मांसौदन ही पाठ है तो भी उसका अर्थ वहाँ औषध या अन्न ही है। यह बात पहले के विवेचन के अनुसार माननी हीं होगी। औक्ष या आर्षभमिश्रित ओदन के लिए माषौदन या मांसौदन नाम आया है यही भावना प्रकरण संगत हैं।[७७]

पं बुद्धदेवजी विद्यालंकार, विद्यामार्त्तण्ड—इसमें 'ऋषभक्' का अर्थ कन्द आदि किया है।[७८]

पं० बदरीदत्त जोशी लिखते हैं :—"यहाँ किसी-किसी पुस्तक में "मांसौदन" ऐसा पाठ है पर हमें वह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पूर्व में सर्वत्र अन्नों का ही उल्लेख है। किसी मांस-प्रिय व्यक्ति के कर्तव्य से परिवर्तन हुआ है। माष शब्द उरद की दाल का पर्यायवाची है। यजुर्वेद में भी अठारहवें अध्याय में अन्नों का वर्णन है वहाँ पर भी 'माष' शब्द आया है।"[७९]

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज—"माषौदन—कहा जा चुका है कि माषौदन का पाठभेद अनेक ग्रन्थों में मांसौदन है। सिवाय इसके कि मांस शब्द के यह अर्थ कर लिये जावें कि (मनः सीदत्यस्मिन् स मांसः) जिससे मन प्रसन्न हो वह मांस है और इस दृष्टि से माषौदन ही मांसौदन है। और कोई प्रकरण गोश्त के अर्थों में मांस के प्रयोग का वहाँ नहीं है। इसलिए कि जिन दस ओषधियों से मंथ और ओदन बनाने का विधान है उनके नाम स्वयं उपनिषद् में दे दिये गये हैं—(१) धान, (२) जौ, (३) तिल, (४) माष, (५) बाजरा, (६) कंगनी, (७) गेहूँ, (८) मसूर, (९) खल्व (१०) कुरथी, (बृ० ३-३-१३)।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि इन ओषधियों में गिनती करते हुए तिल के बाद 'माष ही है इसलिए सतरहवीं कण्डिका में तिलौदन का और उसके बाद अठारवीं कंडिका हैं माषौदन का उल्लेख है। अन्यथा मांस का तो वहाँ जैसा कहा जा चुका है कोई प्रकरण ही नहीं।"[८०]

पं० दीनानाथ जी शर्मा शास्त्री सारस्वत विद्यावागीश, विद्याभूषण,

---

७७. "मासिकपत्र "कल्याण" गोरखपुर का "उपनिषद् अङ्क" वर्ष २३ जनवरी १९४९ ई० संख्या १ पृष्ठ २२७।

७८. "किसकी सेना में भरती होंगे ! कृष्ण की या कंस की" पृष्ठ ३० से ३४ तक

७९. "बृहदारण्यकोपनिषद्" पृष्ठ २९३, (सन् १९३४ ई० में पं० गणपति शर्मा, शर्मा मैशीन प्रिंटिंग प्रेस, मुरादाबाद द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

८०. "बृहदारण्यकोपनिषद्" पृष्ठ ६१८ (संवत् २००६ वि० में सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, पाटौदी हाऊस, दरियागंज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण)

विद्यानिधि अपने "बृहदारण्यक और वृषभ मांसभक्षण" शीर्षक लेख[८१] में लिखते हैं—पहले एक वेद के वक्ता के लिए ओदन का दूध में, दो वेदों के वक्ता के लिए ओदन का दही में 'तीन वेदों के वक्ता के लिए ओदन का गंगा आदि के उदक में पकाना कहा है। यह तरल तथा परस्पर सम्बद्ध वस्तुएँ हैं। १७वीं कंडिका में पुत्री: पण्डितता बुद्धिमत्ता सयानापन के लिए तिल और तंडुल का पकाना कहा है। वहाँ पर तिल धान्यविशेष है। तब १८ वीं कंडिका में पुत्र को पंडित बुद्धिमान् सयाना बनाने के लिए मांस भला प्रकृत कैसे हो सकता है ? पहले दूध, दही तथा जल परस्पर सम्बद्ध थे, पर यहाँ तिल के साथ मांस का क्या सम्बन्ध ! मांस भी यहाँ साहचर्यानुसार कोई धान्य ही होना चाहिए। औक्षेण, आर्षभेण यह पद तृतीयान्त है इनका विशेष्य मांस यहाँ बन भी नहीं सकता क्योंकि यहाँ मांस शब्द में तृतीया नहीं। विशेषण विशेष्य की विभक्ति समान होने का नियम होता है और उस विशेष्य का अन्य पद के साथ समास भी संभव नहीं।

अन्य यह भी विचारणीय है कि 'मांसौदनम्' यहाँ पर समाहार द्वन्द्व है। मांस का मांस अर्थ करने पर यह समाहार द्वन्द्व नहीं हो सकता। तिलौदनम् में तो 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यंजनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्'।(पा० २।४।१२)। इस सूत्र से व्रीहियवम् की भाँति दोनों के धान्य होने से समाहार द्वन्द्व हुआ है पर मांसौदनम् में मांस कोई धान्य नहीं अतः वह समाहार द्वन्द्व नहीं हो सकता। पर यदि वहाँ मांस कोई धान्यविशेष सिद्ध हो जावे तो ठीक संगति लग जावेगी।

वह संगति इस प्रकार है, 'अतो माषान्नमेवैतद् मांसार्थे ब्रह्मणा स्मृतम्···यथा बलिष्ठं मांसत्वाद् माषान्नमपि तत्समम्। सौगन्धिकं च स्वादिष्ठं मधुरं द्रव्यभेदतः' (प्रजापति स्मृति १५२-१५३)। इस प्रमाण से मांस का अर्थ माष धान्य ही होता है। क्योंकि मांसल पदार्थ भी अर्शआद्यच् से "मांस" शब्द से कहे जा सकते हैं। इसलिए स्वयं बृहदारण्यक में दश ग्राम्य धान्यों की गणना करते हुए, व्रीहियवाः तिलमाशाः ६।३।१३ यहां तिल के बाद, माष लिया है। पूर्वोक्त समाहार द्वन्द्व की वैकल्पिकता के कारण यहाँ एकवचन न होकर इतरेतर योग में बहुवचन हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थल मांसौदनम् में भी समझ लेना चाहिए। तब यहाँ माँस से माष का ग्रहण होने से सब संगतियाँ लग जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि माष और ओदन घृताक्त पकाकर उन्हें उक्षा वा ऋषभक के साथ पति पत्नी खावें तो पूर्वोक्त गुणवाला लड़का उत्पन्न होगा। माष की खीर बड़ी पौष्टिक वा वाजीकरण होती है तब उसका वर्णन यहाँ पुत्रोत्पत्त्यर्थ प्रकट भी है।

यहाँ, उक्षा और ऋषभक् के अर्थ पर भी विचारना चाहिए। औक्षेण वा ऋषभेण वा दो वार कहे हुए इस वा शब्द से तो यह सिद्ध ही है कि ये दोनों भिन्न वस्तुएँ

---

८१. मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी का वेदांक वर्ष ७ नवम्बर-दिसम्बर १९५४ ई० अंक १-२ पृष्ठ १३४ से १३६ तक।

हैं। बैल अर्थ करने पर संगति नहीं लगती। आयुर्वेद (उपवेद) में उक्षा सोम औषधि का नाम है।

श्री सायणाचार्य ने भी ऋग्वेद सं० १।१६४।४३ में लिखा है—

'सोम उक्षाऽभवत् ।'

ऋषभ, ऋषभक ओषधि का नाम है। ये दोनों ही ओषधियाँ वाजीकरण होने से बलवर्धन, वीर्योत्पादन और मेधावी पुत्र के उत्पादन की शक्ति रखती हैं। सो उक्त घृताक्त माषौदन उक्त औषधियों में से एक के चाहे सोमलता के, वह न मिले तो ऋषभक के स्वरस के साथ देने से वैसा पुत्र हो सकता है, यह उक्त कंडिका का अर्थ है। इस अर्थ में दुष्क्रम दोष भी नहीं रहता।

यदि यहाँ बैल के माँस से ही वेदवक्ता बालक की उत्पत्ति का अर्थ इष्ट होता तो उसके भक्षक मुसलमान वा ईसाई ही सर्ववेदवक्ता सिद्ध होते, भारतीय नहीं, परन्तु यह अनुभव से विरुद्ध भी है। अतः यह अर्थ सर्वथा नहीं।"

पं० धर्मदेवजी 'विद्यामार्तण्ड':—"यहाँ 'माँसौदनम्' के स्थान पर शुद्ध पाठ 'माषौदानम् है। ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है क्योंकि इससे पूर्व के सन्दर्भों में क्षीरौदनम् दध्योदनम्-उदौदनम्' ये पाठ हैं अथवा चावल के साथ दूध दही-पानीं को पका कर खाने का विधान है। अतः ऊपर के वाक्य में भी माषौदनम् यही पाठ प्रकरण संगत और सर्वथा उचित है।......"[८२]

प्रो० रामसिंह एम० ए०, महामंत्री, सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति, दिल्ली "चिरकाल से 'मांसोदनम्' शब्द से एक महान् प्रमाद और घोर विभ्रम उत्पन्न हो गया है। यहाँ प्रकरण वश 'मांसोदनन्' **शब्द नहीं आना चाहिए। वास्तव में यह शब्द 'माषौदनम्'** होना ही युक्तियुक्त है। लेखकों के प्रमाद से अथवा किसी मांसप्रिय महानुभाव ने ही यह परिवर्तन करने की कृपा की है। वैद्यक-चरक ग्रन्थ में 'माषौदन' वाजीकरण औषध के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'औक्षेण आर्षभेण वा का अर्थ स्पष्ट है कि भोजन तैयार करने का यह सब कार्य ऋषि कृत विधि से ही करे।"[८३]

प्राध्यापक श्री जयदेव जी वेदाचार्य, एम० ए०:—"...कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि यहाँ मांस शब्द के स्थान पर शुद्ध पाठ 'माष' उड़द है जो सर्वथा उचित है। वैद्यक ग्रन्थों में गर्भिणी के लिए उड़द के प्रयोग का भी अनेकत्र विधान है जैसे सुश्रुत के शरीराध्याय दो में।......"[८४]

---

८२. "गोरक्षा परम कर्त्तव्य और गोहत्या महापाप" पृष्ठ ४२ तुलना करो 'वेदों का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ २८१

८३. "श्री पिण्डीदास ज्ञानी कृत "गा-विश्वकी-माँ" प्रथमावृत्ति, 'दो शब्द' पृष्ठ ६

८४. "वेद में मांस विधान" पृष्ठ ३० (फरवरी १९६८ई० वैदिक संस्थान, नजीबाबाद जि० बिजनौर, उ० प्र० द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

पं० सत्यानन्दजी शास्त्री, एम० ए०:—"यहाँ पर मांसाहार के पृष्ठ-पोषकों का दावा है कि 'बृहदारण्यकोपनिषद्' का वचन स्पष्ट ही 'उक्षा' अथवा 'ऋषभ' मानो बैल के मांस के साथ पकाये गये चावलों को खाने का विधान करता है। हमारा उत्तर यह है कि "मांसौदनम्" शब्द "माँसपलाव" (Meat Plao) का पर्याय नहीं अपितु 'उड़द पलावो' का पर्याय है। किसी ने भूल से इस उद्धरण में मकार के बाद आये आकार को सानुनासिक कर दिया है। यहाँ शब्द "मांसौदनम्" न होकर "माषौदनम्" है।......[८५]

यहाँ पन्द्रह पौराणिक व आर्य समाजी विद्वान् 'माषौदन" शुद्ध पाठ मानते हैं। अतः उपनिषद् से 'गोमांस भक्षण' सिद्ध करना भी आपका वृथा प्रयास सिद्ध हुआ।

गृह्यसूत्रों से 'मधुपर्क' में गाय व बैल मांस की चर्चा—पृष्ठ ५५ में—लेखक ने आपस्तम्ब गृ०सू० 'मानव गृ. सू. १।६।१६ से २२ आश्वलायन गृ० सू० व पारस्कर गृ० सूत्र से 'मधुपर्क' में गोमांस का मिश्रण मान कर आक्षेप किया है।

समीक्षाः—

विवाहसंस्कार में 'मधुपर्क' एक आवश्यक सामान होता है जिससे वर का स्वागत किया जाता है। यह 'मधुपर्क' क्या है ? इसमें क्या-क्या सामान डाला जाता है ? कतिपय पाश्चात्य विद्वान् व भारतीय विद्वान् 'मधुपर्क' में मांस डालना आवश्यक समझते हैं। कई 'गृह्यसूत्रों' में भी ऐसा विधान है यह कई विद्वानों का मत है। इन सभी बातों पर विचार किया जा रहा है।

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती महाराज लिखते हैं:'मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उसका परिमाण १२ (बारह) तोले दही में ४ तोले शहद, अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाना चाहिए; और वह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।[८६]

उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर, भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रक्खे, रखके—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि॥

इस मंत्र को एक-एक वार बोलके एक-एक भाग में से वर थोड़ा-थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे। जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देदे वा जल में डाल देवे।[८७]

---

८५. "क्या प्राचीन आर्य लोग मांसाहारी थे ? पृष्ठ २७

८६. 'संस्कार विधि' विवाह प्रकरणम् की पादटिप्पणी।

८७. वही, पृष्ठ १८३

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की दृष्टिमें 'मधु-पर्क' शुद्ध है, उसमें मांस डालने का विधान नहीं है।

अन्य प्रमाणः—

डा. राजबली पाण्डेय एम. ए., डी. लिट्. लिखते हैं:—'श्वसुर वर का जो प्रथम सत्कार करता है, वह है मधुपर्क देना। यह अत्यन्त दुर्लभ सम्मान था, जो समाज के विशिष्ट व्यक्तियों तथा सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्बन्धियों के लिए सुरक्षित था।……आचमनके लिए जल तथा काँसेके ढक्कनसे ढके हुए काँसेके एक बरतनमें दही, घृत तथा मधुका घोल प्रस्तुत करता है।'[८८]

'आहरन्ति विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं दधिमधु-घृतमपिहितं काᳫस्ये काᳫस्येन--' [पारस्कर गृह्यसूत्र १। ३। ५]

यहाँ भी 'मधुपर्क—दधि, मधु, घृत, कांसे के पात्रसे ढका हुआ' कहा है।
'दधनि मध्वानीय सर्पिर्वा मध्वलाभे—'

[आश्वलायन गृह्यसूत्र १, २४, ५, ६]

दही और मधु मिलावे, मधुके अभावमें घृत।

'कांस्ये चमसे वा सदध्निमध्वासिच्य वर्षीयसापिधायाचमनीयप्रथमैः प्रतिपद्यन्ते॥'—

[वाराह गृह्यसूत्रम् खण्ड १२, सू. ४]

डा. उदयनारायण सिंह कृत अनुवादः—'कांसेके कटोरेमें या प्रणीता के समान चमसपात्रमें मधुपर्क और दही मिलाके एक बड़े पात्र से ढाँप कर आचमनीय जल आदि सहित पूजाके पास पूजक आवे।'[८९]

दधिमध्विति संसृज्य कांस्येन वर्षीयसापिधाय
कूर्चाभ्यां परिगृह्य मधुपर्क इति प्राह॥१०॥
'त्रिवृतमेके घृतं च॥११॥ पाङ्क्तमेके धानाः सक्तूंश्च॥१२॥'—

[आपस्तम्बीय गृह्यसूत्रम् १३ खंड]

'ब्राह्मणसर्वस्व' पत्र के सम्पादक वेद व्याख्याता पं० **भीमसेन शर्मा इटावाः—**

फिर पूजक दही और सहत को मिलाके कांसे के बड़े पात्र से ढांपकर दोनों ओर से कुंभ के आसनों से पकड़के (मधुपर्कः) ऐसा कहे॥१०॥ किन्हीं आचार्यों का मत है कि मधुपर्क में घृत भी हो तो दही शहत घी तीन हों॥११॥ तथा किन्हीं

---

८८ 'हिन्दू संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, पृष्ठ २६८ (सन् १९४७ ई. में **चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. 1 द्वारा प्रकाशित)**

८९. **'वाराह गृह्यसूत्रम्' पृष्ठ ३४(सन् १९३४ ई में शास्त्र प्रकाश भवन, मधुरापुर. डा० विद्दुपुर बाजार, ज़ि० मुजफ्फरपुर (बिहार) द्वारा प्रकाशित)**

कल्पसूत्रकारों की राय है कि भूने जौ और सत्तू मिलके पाँच वस्तु मधुपर्क में हों ॥ १२ ॥[६०]

बौधायनगृह्य सू० (१।२।६-१०) सूत्र ६ में मधु लाने की बात का उल्लेख है। दशवें सूत्र में मधु में दही वा दूध मिलाने से 'द्विवृत्', घृत मिलाने से 'त्रिवृत्' पहले दूध मिलाया हो तो दही मिलाने से अथवा पहले दही मिलाया हो तो दूध मिलाने से 'चतुर्वृत्' और जल मिलाने पर 'पाङ्क्त' कहलाता है।[६१]

जैमिनीय गृह्यसूत्र१:१६

तयोर्दधिमधुसंनिहिते भवतो, दध्ना चेत्।

दधिमन्थोऽद्भिश्चेद उद्मन्थः पयसा चेत् पयस्यः ॥

अर्थात्—उनमें दही और मधु मिले रहते हैं। यदि दही हो तो 'दधिमंथ' कहलाता है। यदि पानी हो तो 'उद्मन्थ' कहलाता है और यदि दूध (पयस्) हो तो 'पयस्य' कहलाता है।[६२]

हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र १।१२।१०—

'प्रक्षालन के लिए जल अर्पण और फिर मधुपर्क, जिसमें तीन या पांच वस्तुएँ हैं—दधि, मधु, घृत—उसमें आपः (जल) और सक्तु (सत्तु) भी मिलाया जा सकता है।'[६३]

तन्त्रसार (चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी का नवम्बर १६३८ संस्करण, प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ ५३)

आज्यं दधिमधुमिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः।

मधुपर्क में घृत, दधि और मधु का मिश्रण ही बुद्धिमानों ने बताया है। तन्त्रसार का यही उद्धरण 'शब्दकल्पद्रुम' (चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी द्वारा प्रकाशित १६६१ संस्करण, भाग ३, पृष्ठ ५६६, कालम २) में भी मधुपर्क के अर्थ में उद्धृत किया गया है।[६४]

'शब्दकल्पद्रुम' में वहीं पर मधुपर्क के अर्थ में कालिका पुराण, अध्याय ७ से निम्न उद्धरण दिया है—

६०. सन् १६०५ में पं० सत्यव्रत शर्मा द्विवेदी द्वारा वेद प्रकाश मुद्रणालय में मुद्रित व प्रकाशित [सनातन धर्म पुस्तकालय, इटावा द्वारा प्राप्य] 'आपस्तम्बीयं गृह्यसूत्रम्' भाषावृत्तियुतम् पृष्ठ ३३

६१. 'प्राचीन भारत गोमांस–एक समीक्षा' पृष्ठ ६६ [सन् १६७० ई० गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

६२. वही, पृष्ठ ६६-६७

६३. वही, पृष्ठ ६७

६४. वही, पृष्ठ ६५

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितैताभिस्तु पञ्चभिः।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोपतुष्टये ॥

दही, घी, दूध, मधु, (शहद) और मिश्री—इन पांचों का मधुपर्क बनता है जो सब देवों को तुष्ट करने वाला है।[६५]

ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसंहिता, (स्मृति—सन्दर्भ, चतुर्थभाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४३०, प्रकाशक—मनसुखराय मोर, नं० ५ क्लाइव रो, कलकत्ता), अष्टम अध्याय, श्लोक संख्या २०२।

कांस्यपात्रे समायुक्तं दधिमधुघृतैर्युतम्।
मधुपर्कः स विज्ञेयो मित्रस्य त्वा प्रतीक्षणी ॥

दधि, मधु और घृत से युक्त कांस्यपात्र में बना हुआ पदार्थ 'मधुपर्क' कहा जाता है।[६६]

'कौशिक सूत्र० (९२) ने ९ प्रकार के मिश्रण की चर्चा की है—ब्राह्म (मधु एवं दही) ऐन्द्र (पायसका), सौम्य (दही एवं घृत) पौष्ण (घृत एवं मट्ठा) सारस्वत (दूध एवं घृत) मौसल (आसव एवं घृत, इनका प्रयोग केवल सौत्रामणी एवं राजसूय यज्ञों में होता है)' वारुण (तिल का तेल एवं घृत), पारिव्राजक (तिल तेल एवं खली)।[६७]

पं० सुब्रह्मण्यजी लिखते हैं :—

"ततः कांस्यपात्रे दधिमधुघृतं संसृज्य, संस्थाप्य, वर्षीयसा कांस्यपात्रेणापिधाय दद्यात्। ततोऽर्चकः पूर्वोक्तमधुपर्कपात्रं गृहीत्वा मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति वदेत्।"[६८]

श्री शुकदेव वर्मा कृत अनुवाद :—"पूजक एक कांस्यपात्र में रखे हुए दही मधु और घी को दूसरे कांस्यपात्र से ढांककर 'मधुपर्को०' वाक्य को पढ़ता हुआ पूज्य को दे देवे।"

इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह कहना उचित है कि 'मधुपर्क' निरामिष होता है।

पूर्वपक्ष—मधुपर्क में मांस नहीं पड़ता है। कुछ स्थलों में 'मधुपर्क' में 'मांस' की चर्चा है :—

---

६५. वही, पृष्ठ ९५

६६. वही, पृष्ठ ९५

६७. डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे एम० ए० एल० एल० एम० कृत 'धर्मशास्त्र का इतिहास' [प्रथम भाग] पृष्ठ ३१० [हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

६८. 'गोभिलीयगृह्यकर्म प्रकाशिका' पृष्ठ ४७८ [सन् १९३२ ई० में, प्रथमावृत्ति]

(क) **"नामांसो मधुपर्को भवति भवति"—**

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२६)

(ख) **"नत्त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्"—** (पारस्करगृह्यसूत्र १।३:२९)

लेकिन मधुपर्क तो विना मांस ही नहीं होता है।

(ग) **"मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।**

अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥" (मनुस्मृति ५।४१)

"मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए [अन्य किसी कार्य में नहीं], ऐसा मनु ने कहा है।"

समीक्षा—

(क) वेदों में कहीं भी मांस-भक्षण का विधान नहीं है। अतः वेदों के सामने गृह्यसूत्र प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। मधुपर्क, यज्ञ या किसी भी कार्य में पशु-वध करना महान् पाप है।

'नामांसो मधुपर्को भवति" 'नामांसो' शब्द का सन्धि-विच्छेद 'ना आमांसो' भी होता है। इस प्रकार सन्धि-विच्छेद करने पर 'आमांसो' में 'आ' का प्रयोग 'अमरकोष' ३।३।२३९ के अनुसार निम्न अर्थों में ही हो सकता है—

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे। (औरकोश ३।३।२३९)

इसका पदच्छेद—आङ् ईषत् अर्थे अभिव्याप्तौ सीमा—अर्थे धातुयोगजे। अर्थात्—'आ' का प्रयोग 'थोड़ा' अर्थ में, अभिव्याप्त (व्यापक होना) अर्थ में, 'सीमा' अर्थ में और 'धातुयोग' में होता है। 'नामांसो मधुपर्को भवति' में 'आमांसो' का अर्थ 'मांस से व्याप्त' होगा और उसका तात्पर्य 'मांस सहित' ही बनता है। पूरे सूत्र का अर्थ होगा—'मधुपर्को आमांसो न भवति—मधुपर्क आमांसो' (मांस से व्याप्त—मांस सहित नहीं होता, अर्थात् 'मधुपर्क मांसरहित होता है।'[६६]

पौराणिकों के विचार—

पं० दीनानाथजी शास्त्री लिखते हैं :—यह भी बात ठीक मालूम नहीं होती, मधुपर्क में दधि, घृत, मधु वा चीनी यह मीठी वस्तुएँ होती हैं, यहाँ गोमांस का काम भी क्या? यह मधुपर्क वर की पूजा होती है। जब वह मधुपर्क ही सारा नहीं खाता; तो एक समूची गाय ही कैसे निगल लेगा? यह तो फिर 'चर्मतन्तो-महिषीं हन्ति' चमड़े की तन्तु के लिए समूची भैंस को मारना होगा, १००-२०० आदमियों का भक्ष्य एक वर कैसे खावेगा? और यह भी सुना जाता है कि मांस की वस्तुएँ नमकीन ही बनती हैं, तो मधुपेय के समय नमक वा मांस का काम ही क्या?

'समांसोऽर्घ' का हमारे विचार में 'मधुपर्क-रूप अर्घ समांस हो' का भाव मधुपर्क की मांसलता से है अर्थात् उस समय के दधि, मधु, नवनीत वा घृत मांसल (पौष्टिक) हों, निस्सार न हों, सपरेटे के दूध के न हों; शहद भी बनावटी चीनी

६६. **'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा'** पृष्ठ १०८।

आदि का न हो। गृहस्थाश्रम में सारसहित (पौष्टिक) दधि, मधु, घृत का सेवन वर को करना चाहिए।'[१००]

पं० माधवाचार्य शास्त्री :—

"...वानप्रस्थ और संन्यस्त व्यक्तियों को केवल मधुपर्क और अन्य मान्य अतिथियों को धारोष्ण पायस, खीर, सिखरन आदि पदार्थों सहित ही मधुपर्क दिया जाना चाहिए यह शास्त्राज्ञा है। तदनुसार यहाँ भी गृहस्थ वशिष्ठजी को धारोष्ण दुग्धसहित मधुपर्क प्रदान किया गया है और तृतीयाश्रमी जनकजी को केवल मधुपर्क मात्र दिया गया है यही उक्त प्रसंग के 'समांस' मधुपर्क दिए जाने का तात्पर्य है।[१०१]

(ख) पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रमाण पर विचार :

मधुपर्क ग्रहण कर लेने के पश्चात् गौ का प्रसंग इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि मधुपर्क में गोमांस की कोई संभावना नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र १-३-२५ से २९ तक ५ सूत्र प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। ये वाममार्गियों द्वारा मिश्रग हैं, क्योंकि मधुपर्क हो चुका, खा भी चुके, आगे गौ की प्रशंसा है कि यह गौ रुद्रों की माता है—वसुओं की पुत्री है और आदित्यों की बहिन है अमृत की नाभि है। यह ऋग्वेद का मंत्र है जिसमें गोहत्या का सर्वथा ही निषेध है। गौ की प्रशंसा है।

जब अर्घ्य पूजनीय राजादि ही निषेधकर्ता है, फिर भी यह कर्म करना आज्ञा-भंग पाप भी है।

कर्काचार्य, जयराम, हरिहर, भाष्यकार मधुपर्क में मांस मानते हैं पर कलि में, निषेध मानते हैं।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री, त्रयोदशतीर्थ, एम० ए०, पी० एच० डी० भूतपूर्व अध्यक्ष दयानन्द कालेज, कानपुर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"टि० (१) पारस्करगृह्यसूत्र के अनेक व्याख्याकारों ने यहाँ मांसयुक्त मधुपर्क का विधान माना है किन्तु पराशर और याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित निषेध वाक्यों से कलियुग में उसको वर्जित ही माना है।

निषेधवाक्य—

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतु। ॥ याज्ञवल्क्य ॥ (हरिहरभा०)

× × ×

यज्ञाधानं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत्॥

॥ पराशर ॥ (गदाधर टी०)

---

१००. 'श्रीसनातनधर्मालोक (६), प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४३-४४४

१०१. मासिक पत्र 'लोकालोक' दिल्ली का 'शंका समाधानांक' वर्ष ४ पौष २०२१ अंक ११, पृष्ठ ३९

अतः उक्त व्याख्या ही आचारानुकूल है और यही गोदान विधि है।[१०२]

पारस्कर गृह्यसूत्र १-३-५ के भाष्य में कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ, "दहि, घृत और शहद मिला हुआ मधुपर्क कांस्य के पात्र से ढका हुआ लावे" ऐसा कहते हैं।[१०३]

श्री शुकदेव वर्मा चौहान का भाषाभाष्य :—

'कांस्य के पात्र में दही सहत या गुड़ और घृत कांस्पयात्र से ढककर क्रमशः पूर्व पूर्व इन सब पदार्थों को रखे।[१०४]

जब सभी भाष्यकार मधुपर्क को मांसरहित मानते हैं तो पुनः उसी गृह्यसूत्र में मांसयुक्त मधुपर्क का बतलाना 'वदतो व्याघात' दोषयुक्त है। इससे तो पता चलता है कि 'पारस्कर गृ० सू० १-३-२९' प्रक्षिप्त है, क्योंकि एक ही लेखक परस्पर विरुद्ध बातें नहीं लिख सकता।

यदि 'दुर्जनतोषन्याय' से उसे प्रक्षिप्त न भी माना जाय तो उसका अर्थ यों हो सकता है :—

'पारस्कर गृह्यसूत्र के २९ वें सूत्र 'नत्वेवामांसोऽर्घ्यः स्यात्' का अर्थ भी 'नामांसो मधुपर्को भवति' की तरह दो प्रकार है—

(१) न तु एव अमांसो अर्घ्यः स्यात्

(२) न तु एव आमांसो अर्घ्यः स्यात्

पहले का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) अमांसः (मांसरहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। दूसरे अर्थ का भाव है—अर्घ्य (मधुपर्क) आमांस (मांससहित) निश्चयपूर्वक नहीं होता। इन दोनों अर्थों की संगति तथा असंगतिका विवेचन तथा 'मांस का अर्थ गूदेदार फल का विवेचन आश्वलायन गृह्यसूत्र के अन्तर्गत हो चुका है।'[१०५]

मनुस्मृति ५।४१ पर विचार :—

मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही विद्वान् अपनी लेखनी से लिखकर उसके विरुद्ध उसी पुस्तक में लिखते हैं तो उसे कौन उसकी कृति मानेगा?

---

१०२. 'पारस्कर गृह्यसूत्र' (हरिहर भाष्य हिन्दी व्याख्यासहित) प्रथमकाण्ड, पृष्ठ २५ (अगस्त सन् १९७० ई० में भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौड़ीगली, वाराणसी द्वारा प्रकाशित)

१०३. द्रष्टव्य 'पारस्कर गृह्यसूत्रम् (श्रीकर्कोपाध्याय, जयराम, हरिहर, गदाधर, विश्वनाथ–प्रणीतम् भाष्यसमलंकृतम्) [सन् १९१७ ई० में गुजराती मुद्रणालय, बम्बई द्वारा मुद्रित प्रकाशित]

१०४. 'पारस्करगृह्यसूत्रम्' पृष्ठ २१ [सन् १९१४ ई० में तारा यन्त्रालय, वाराणसी में मुद्रित]

१०५. 'प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा' पृष्ठ ११३

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ११९-१२० में 'मधुपर्क' शब्द आया है। पं० कुल्लूक भट्ट इनके भाष्य में मांसयुक्त मधुपर्क नहीं लिखते हैं, परन्तु राजा राजेन्द्रलालमित्र प्रभृति को इसमें भी 'गोमांससहित मधुपर्क' अर्थ दिखाई देता है जो सर्वथा भ्रम-पूर्ण है।

पुनः—

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ।। ५-४१ ।।

'मधुपर्क, यज्ञ, पितृकार्य तथा देवकार्य में ही पशु का वध करना चाहिए और कहीं नहीं ऐसा मनु ने कहा है।'

इसके अन्तिम वाक्यांश 'इत्यब्रवीन्मनु :—इति अब्रवीत् मनु :—ऐसा मनु ने कहा''इस बात का द्योतक है कि ये वचन 'मनुस्मृति' के नहीं हैं। मनुस्मृति में दिये गए सभी विधान राजर्षि मनुजी के हैं, उसमें यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि यह मनु ने कहा है। और किसी ग्रन्थ में मनु के विधान का उदाहरण दिया जाय तो वहाँ ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसा मनु ने कहा है—मनु जी ने ऐसा विधान दिया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह वचन मनुस्मृति के अन्तर्गत मनु महा-राज के द्वारा दिए गए विधान का नहीं है।

इसी ५ वें अध्याय के श्लोक ४५ से ५५ तक में मांसभक्षण का निषेध है। पुनः इसी अध्याय में विधान कैसे ?

सामवेद भाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी 'मनुस्मृति भाषानुवाद' में लिखते हैं :—

'२६ से ४२ तक १७ श्लोक निकालकर २५ वें से ४३ वें को मिलाकर पढ़िये तो प्रकरण ठीक मिल जाता है और इस मांस की विधि को मनु में मिलाने वाले ने ऐसी अधिकता से मिलाया है कि एक ही बात (श्राद्धादि न करके मांस न खावे) अनेक वार पिष्टपेषण करता ही जाता है। यह मांस भक्षण किसी कर्म में मनु का सम्मत नहीं है, इसका निषेध मनु ने स्वयं इसी अध्याय के ४३ वें से ५५ वें तक १३ श्लोकों में बड़े बलपूर्वक किया है और ब्यौरेवार इसकी बुराई घिनौनापन दूषितता एवं पातता सब बतलाई है वे बुराइयें यज्ञ में कैसे हो सकती हैं। मनु जब मांस को राक्षसादि का भोजन मानते हैं, तो देवकार्य में कैसे ग्राह्य हो सकता है। ये श्लोक अवश्य प्रक्षिप्त हैं जैसा कि महाभारत, मोक्ष धर्मपर्व में कहा है कि—

सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून्नराः ।।

धर्मात्मा मनु ने सब कर्म (वैश्वदेवादि) में अहिंसा ही कही थी परन्तु अपनी

इच्छा से शास्त्राबाह्य यज्ञ वेदी पर लोग पशुओं को मारते हैं।"[१०६]

अतः 'मधुपर्क' में माँस नहीं डाला जाता ।

क्या 'उत्तररामचरित' नाटक में बछिया के वध की चर्चा है ?

पृष्ठ ५५-५६:—"...वैदिक कर्मकाण्ड के महाविद्वान् कुमारिल भट्ट के शिष्य महाकवि भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तररामचरित' के चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में लिखा है कि भगवान् (?)वाल्मीकि के आश्रम में भगवान् (?) वसिष्ठ पहुँचे तो दो वर्ष की गाय को कत्ल करके उनका सत्कार किया गया...।"

समीक्षा—वेदों के सामने नाटक का प्रमाण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, वाल्मीकीय रामायण से कई भिन्न कथाओं का वर्णन इस 'उत्तर रामचरित' में है जिसको कोई भी विद्वान् नहीं मानता है।

श्री मोतीलालजी जालान लिखते हैं—"...घटना-प्रसंग कल्पित है। अतः वाल्मीकि ऋषि द्वारा वसिष्ठ ऋषि को गोमांसयुक्त मधुपर्क दिलाना और उनके द्वारा स्वीकार करना भी कल्पित और मिथ्या है। अतः यह सिद्ध हुआ कि 'उत्तर रामचरित' नाटक में चतुर्थ अंक में गोहत्या करवा कर ताजा गोमांसयुक्त मधुपर्क की बात कल्पित और मिथ्या है। ऐतिहासिक सत्य नहीं है।"[१०७]

पं० दीनानाथजी शास्त्री—"...नाटक शास्त्रकोटि में नहीं आ सकता। तब उसका प्रामाण्य भी क्या हो ? इसके अतिरिक्त 'उत्तर रामचरित' में यद्यपि सीता-रामचरित्र हैं; तथापि उसमें वाल्मीकि-रामायण से भिन्न बहुत-सी बातें मन-कल्पित हैं।...

वस्तुतः यहाँ और रहस्य है, गाय का दूध प्रायः अतिथि के कार्य में लग जाने से वह वत्सतरी (बछिया) के लिए नहीं बचा होगा; इसलिए वह बेचारी भूख से बिलबिलाती होगी। यही 'वत्सतरी मड़मडायिता' से संकेत मिलता है सो अतिथ्यर्थ वत्सतरी-विशसन यहाँ भी हो जाता है। श्रीजनक ने क्षत्रिय होनेसे वा वानप्रस्थ होने से मुनि की गाय का दूध आदि स्वीकार नहीं किया; इसलिए वहाँ उसके लिए कहा है—'वत्सतरी विसर्जिता।'[१०८]

अतः आपका यह प्रयास भी व्यर्थ सिद्ध हुआ।

---

१०६. 'मनुस्मृति' पृष्ठ २६५ [गोयलब्रादर्स, थोक पुस्तकालय दरीबाकलां, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित] तुलना करो—मासिक पत्रिका 'तपोभूमि' मथुरा का 'शुद्ध मनुस्मृति अंक' वर्ष १४, जून १९६७ ई० अंक ५-६, पृष्ठ २९०-२९१

१०७ "प्राचीन भारत मे गोमांस-एक समीक्षा" पृष्ठ १२४-१२५

१०८ "श्री सनातनधर्मालोक (६) पृष्ठ ४४१-४४२

क्या वाल्मीकि रामायण में मत्स्य, मांस, शराब की चर्चा है?

पृष्ठ ५६:—लेखक ने वा. रा. अयोध्याका० सर्ग ५२।८७; बालकाण्ड १४। ३१,३३,३६, उत्तरकांड ४२।१६-१७; अयो० सर्ग ५६।२३; अरण्यकांड सर्ग ४७।२३; अयो० ९१।५२, से मांस सिद्ध करने का प्रयास किया है।

समीक्षा—पीछे प्रबल पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर दिया गया है कि वेदों में मांस भक्षण की चर्चा नहीं है तब वाल्मीकि रामायण का प्रमाण प्रस्तुत करना मूर्खता है। आर्यसमाजी विद्वान् उन स्थलों को प्रक्षिप्त मानते हैं परन्तु पौराणिक (सनातन धर्मी) विद्वान् उनको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। अतः पौराणिक पंडितों की टीकाओं के आधार पर ही प्रदर्शित किया जाता है कि वाल्मीकि रामायण में मांस की चर्चा नहीं है।

"सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वाँ प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता॥"

—[वा० रा०, अयोध्या का० सर्ग ५२ श्लो०···८७]

भ्रष्ट अर्थः—"हे देवि! मैं अपनी इस नगरी को वापस आकर तुम्हारी शराब के हजारों घड़ों और मांस मिश्रित ओदन से पूजा करूंगी।"

सत्यार्थ :—"(जब भगवान् राम, सीता और लक्ष्मण निषादराज गुह द्वारा प्रदत्त नाव में बैठकर भगवती भागीरथी को पार कर रहे थे तब मध्यधारा में पहुँचने पर महाराणी सीता ने गंगा की प्रार्थना करते हुए कहा—

'देवि! पुनः अयोध्यापुरी को लौटने पर मैं सहस्रों देव दुर्लभ पदार्थों से तथा राजकीय भाग से रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्न के द्वारा आपकी पूजा करूँगी। आप मुझ पर प्रसन्न हो।'

टिप्पणी :—इस श्लोक में आए हुए 'सुराघटसहस्रेण' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'सुरेषु देवेषु न घटन्ते तेन सहस्रसंख्याकसुरदुर्लभपदार्थेनेत्यर्थः।' 'मांस भूतौदनेन' की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए, 'मांसभूतौदनेन मा नास्ति अंशो राजाभगो यस्या सा एव भूः पृथ्वी च उत वस्त्रं च औदनं च एतेषां समाहारः, तेन च त्वां-यक्ष्ये।"

यह टीका गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा अनूदित व प्रकाशित से ली गई है।[१०९]

---

१०९. तुलना करो "पाक्षिक पत्र" "आर्य मार्तण्ड" अजमेर, वर्ष ५१ दिनाङ्क १ मार्च १९७३ ई० अङ्क २५, पृष्ठ १३, "देव दयानन्द की दिव्य देन" शीर्षक से श्री पिण्डी दास ज्ञानी का लेख।

वा० रा० बालकाण्ड सर्ग १४, श्लोक ३१, ३३, ३६ प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि बाल-कांड में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा अप्रसंग है। महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी ने इसे प्रक्षिप्त माना है।[११०]

"इमं मा हिंसीरेकशफ पशूं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु" (यजु० १३।४८)

"इस एक खुर वाले पशु की हिंसा न कर जो कि ह्वेषा शब्द बारम्बार करता और जो वेगवालों में अत्यन्त वेगवाला है।

इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्रा० ७।५।२।३३ में—

"एकशफो वा एव पशुर्यदश्वः, त मा हिंसीरिति।"

"एक शफ वाले पशु अर्थात् अश्व की तू हिंसा न कर।

जब वेद में अश्ववध का निषेध है तो कौशल्या द्वारा अश्व का हनन करना अनुचित प्रतीत होता है।

"मृगं हत्वा ऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण।"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ५६ श्लो० २३)

भ्रष्ट अर्थ :—राम ने मृगमांस मंगवाकर पर्णकुटी की पूजा की और वह मृग लक्ष्मण के हाथों मरवाया गया।"

सत्यार्थ :—" 'मृग' नाम यहाँ गजकन्द का है। 'मदनपाल निघण्टु' में कहा है—(मृगः पशौ कुरंगे गजे च' इति शब्दस्तोम) इस स्थान पर 'कन्द' का लोप हो जाता हैं (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः—महाभाष्य) तात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्द को उखाड़ कर शीघ्र ले आओ। यहाँ 'क्षिप्र' पद पर ध्यान दीजिए। क्या वहाँ मृग बध होने के लिए खड़े थे जो मार कर शीघ्र ला दिए जाते। 'शुभेक्षण' सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्री लक्ष्मण के गजकन्द पह-चानने के चातुर्य को लक्ष्य में रख कर किया गया है। भगवान् बार बार कहते हैं कि 'कर्त्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मर' उस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ धर्म का पालन कर रहे हैं। शास्त्रों में वानप्रस्थी के लिए केवल कन्द-मूल-फलों के ही खाने की आज्ञा दी गई है। इसलिए भगवती सीता का रावण को फल-भिक्षा ही देने का वर्णन है।"[१११]

"आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्।
कन्दमूल फलं पुष्पं यच्चान्यत् मधुरं प्रियम्॥"

—(वा० रा० अरण्यकाण्ड, सर्ग ४७ श्लो० २३)

---

११०. "वाल्मीकीय रामायणार्य टीका" द्वितीय भाग की भूमिका पृष्ठ २८, २९, ३० (सन् १९१२ ई० में बाम्बे यन्त्रालय, लाहौर में मुद्रित)

१११. मासिक पत्र "कल्याण" गोरखपुर का "श्रीरामायणाङ्क" वर्ष ५, जुलाई १९३० ई०, संख्या १, खण्ड १, पृष्ठ १३९ "विद्यावाचस्पति पं० बालचन्द जी शास्त्री का "श्रीरामायण में मांसाहार" शीर्षक लेख।

मिथ्यार्थ :—(सीता रावण से कहती है), "अभी मेरा पति बहुत से काले मृगों, गोहों और सूअरों का मांस लेकर आ जाएगा।"

सत्यार्थ—बाल ब्रह्मचारी पं० अखिलानन्द जी :—"मेरे पतिदेव वन में होने वाले कन्द, मूल, फल, पुष्प तथा अन्य स्वादु पुष्कल सामग्री को लेकर आवेंगे।"[११२]

"रूरून् गोधान् वराहांश्च हत्वा ऽऽदायामिषान् बहून्" यह श्लोक प्रक्षिप्त है क्योंकि इसे **साहित्य वाचस्पति चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद शर्मा** ने ब्राइकेट में देकर अर्थ किया है।[११३]

किसी मांस प्रिय व्यक्ति ने "कन्दमूल फलं पुष्पं यच्चान्यत् मधुरं प्रियम्" श्लोक को हटा कर "रूरून् गोधान् वराहांश्च हत्वा ऽऽदायामिषान् बहून्" मिला दिया है।

"सुराः सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः।
मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यावदिच्छथ॥"

—(अयोध्या काण्ड सर्ग ९१ श्लो०५२)

मिथ्यार्थ : "भरत के साथ आये अयोध्यावासियों का सत्कार करते हुए ऋषि भरद्वाज ने शराबियों के लिए शराब और मांस खाने वालों के लिए अच्छे-अच्छे मांस जुटाये।"

सत्यार्थ :—"वे भरत के सैनिकों को पुकार-पुकार कर कहती थी मधु का पान करने वाले लोगो! (सुरापाः) लो यह मधु का पान करो। (सुरां पिबत) तुम में से जिन्हें भूख लगी हो, वह खीर (पायस) खाओ और परम पवित्र फलों के गूदे (मांसानि च सुमेध्यानि) भी प्रस्तुत हैं, इनका आस्वादन करो। जिसकी जो इच्छा हो भोजन करो।"[११४]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर को भी यह अर्थ खटका, क्योंकि वे लिखते हैं :—

"……इस भोजन का वर्णन बड़ा सन्देह करने योग्य है।

इस भोजन में शराबियों के लिए मद्य तैयार था, पायस पीने वालों में लिए पायस था, मांस खाने वालों के लिए मांस था, एक-एक के लिए सात-सात स्त्रियाँ शरीर पर तेल लगाने के लिए थीं (अयोध्या ९१।५१-५४) यह **वर्णन आश्रम-जीवन**

---

११२. मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वर्ष १५, अङ्क ३ पृष्ठ ६७८।

११३. "श्री मद्वाल्मीकि रामायण" (हिन्दीभाषानुवाद सहित) अरण्यकाण्ड-४, पृष्ठ ३६३-३६४ (सन् १९५० ई०, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद)

११४. यह अर्थ गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा अनुवादित वाल्मीकि रामायण में है, तुलना करो पाक्षिक पत्र "आर्य मार्तण्ड" अजमेर, वर्ष ५१, अप्रैल १ सन् १९७३ ई०, अङ्क २६, पृष्ठ ९।

के साथ सजने वाला नहीं हैं। यहाँ बकरों और सूअरों के भी मांस परोसे थे (६७) मिट्टी के खप्पर पर भूने मांस भी थे। (७०) **ये सब वर्णन मुनिभोजन के साथ तथा आश्रमजीवन के साथ मिलने-जुलने वाले नहीं हैं।**"[११५]

पृष्ठ ५६ :—"इसी रामायण के उत्तरकाण्ड, सर्ग ४२ से पता चलता है कि 'सीता को रामचन्द्र ने अपने हाथों गुड़ और घौ के फूलों से बनी शराब पिलाई (१८-१९)' तब सेवक राम के खाने के लिए तरह-तरह के मांस और मिष्टान्न ले आए (१९-२०)।"

समीक्षा :—उत्तरकाण्ड को विद्वान् वाल्मीकि ऋषि कृत नहीं मानते हैं। वे युद्धकाण्ड तक ही मानते हैं। अतः यह प्रक्षिप्त है, क्योंकि वनगमन के समय महाराजा दशरथ और महारानी कैकेयी के प्रति भगवान् रामचन्द्र जी क्या कहते हैं :—

"चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।"

—(वा० रा० अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लो० २९)

अर्थ : मैं राज्यभोग्योचित *वस्तुओं को छोड़कर मुनियों के समान मधु, कन्द, मूल एवं फलों से जीवन निर्वाह करता हुआ निर्जन वन में १४ वर्ष तक वास करूंगा।"

और भी कहा है—

"फलानि मूलानि च भक्षयन् वने
गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च।
वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं
सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः॥"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ३४ श्लो० ५९)

११५. श्री वाल्मीकि प्रणीत श्रीरामायण महाकाव्य (तृतीय भाग) अयोध्या काण्ड, (उत्तरार्ध), (हिन्दी अनुवाद तथा निरीक्षण" पृष्ठ ३५० (सन् १९४६ ई० प्रथम संस्करण औंध)

*'आमिषम्' का तात्पर्य 'राजभोग्योचित पदार्थों' से है। 'मेदिनीकोष' में 'आमिषम्' का अर्थ 'राजभोग्यवस्तु' भी दिया है—"आकर्षणे ऽपि पुंसि स्यादामिषं पुंनपुंसकम्। भोग्य वस्तुनि संभोगे ऽप्युत्कोचे पलले ऽपि च। 'रामचन्द्र टीकाकार ने भी इसका यही अर्थ किया है। पूर्वापर विचार करने पर भी यहाँ 'आमिषम्' का अर्थ मांस करना उचित नहीं प्रतीत होता। पूर्ण प्रकरण (सर्ग १२) में जहाँ राम के लिए भोजन के पदार्थों का वर्णन आया है, वहाँ मांस का वर्णन नहीं किया गया। मांस अर्थ करने पर इससे उसका विरोध होगा।" (मासिक पत्रिका 'वेदवाणी' वर्ष १२, अङ्क ८, पृष्ठ २६०)

अर्थ : "नाना प्रकार के विचित्र वृक्षों से सुशोभित वन में प्रवेश करके वहाँ फल-मूल खाता हुआ तथा पर्वतों, नदियों एवं तालाबों को देखता हुआ मैं सुखपूर्वक रहूँगा । आप प्रसन्न एवं सुखी होवें ।"

पुनः मुनि भरद्वाज जी के प्रति भी भगवान् ने इसी वाक्य को कहा—

"धर्ममेव चरिष्यामः पत्रमूलफलाशनाः ।"

—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४ श्लो० १६)

अर्थ : "पत्र, मूल, फल आदि खाते हुए धर्म का ही आचरण करेंगे ।

सीता जी भी वन जाने के लिए श्री रामचन्द्र जी से प्रार्थना करते हुए कहती हैं :—

"फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।"

—(वा० रा० अयो० सर्ग २७ श्लो० १५)

अर्थ : 'नित्य फल-मूल खाती हुई मैं (आपके साथ) रहूँगी, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं ।"

श्रीराम जी ने निषादराज से कहा था :—

"कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं च माम् ।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥"

—(वा० रा० अयो० सर्ग ५० श्लो० ४४)

अर्थ : "कुश-चीर-अजिन (मृगछाला) का धारण करने वाला तथा फल-मूल आदि भोजन करने वाला मुझे समझें । इस समय मैं वनवासी तपस्वियों के धर्म में दीक्षित हो रहा हूँ ।"

वन को चलते समय श्री लक्ष्मणजी ने अपनी उपयोगिता बनाते हुए कहा था —

"आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि फलानि च ।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहाराणि तपस्विनाम् ।"

—(अयोध्या काण्ड, सर्ग ३१, श्लो० २६)

अर्थ : मैं नित्य आपके लिए मूल-फल, तथा अन्य जो तपस्वियों के लिए श्रेष्ठ आहार के योग्य वन की वस्तुएँ हैं, वे सब लाया करूँगा ।"

"न राघवो मांसं भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते ।"

—(वा० रा० सुन्दर काण्ड, सर्ग ३६, श्लो० ४१)

अर्थ : ("हनुमान् जी सीता जी से कहते हैं) राम न मांस खाते हैं और न मद्य पीते हैं ।"

अतः इन प्रमाणों से उत्तरकाण्ड के श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहे है । 'वाल्मीकि रामायण' से भी लेखक द्वारा मांसाहार सिद्ध करना व्यर्थ हो गया ।

मनुस्मृति और मांसाहार :

पृष्ठ ५६, ५७, ५८, :—"मनु० १०।१०५, १०।१०६, १०।१०७, ५।५६, ५।३२, ५।३५, ५।३९-४०, ५।२९, ५।१८, ३।२६८, ३।२६९, ७०, ७१ में मांसाहार का वर्णन है।

समीक्षा : वर्तमान मनुस्मृति में बहुत से श्लोक प्रक्षिप्त हैं। एक ही लेखक अपने ग्रन्थ में परस्पर विरोधी बातें नहीं लिख सकता। अतः मनुस्मृति का सारा मांस-प्रकरण प्रक्षिप्त है। पौराणिक होते हुए भी व्याकरण-साहित्याचार्य, साहित्यरत्न—**पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री** अपनी "मनुस्मृतिः सविमर्श 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका सहिता पृष्ठ ३१-३२ (सन् १९५६ ई० द्वितीय संस्करण, चौखम्बा, वाराणसी) में १७५ श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हैं। मनुस्मृति के केवल एक श्लोक से ही सम्पूर्ण मांस प्रकरण प्रक्षिप्त हो जाता है—

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकः॥"

—(मनु० ५।५१)

उक्त पं० जी कृत टीका : "अनुमति देने वाला, शस्त्र से मरे हुए जीव के अंगो को टुकड़े-टुकड़े करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, वेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला; (जीव वध में) ये सभी घातक (हिंसक) होते हैं।

विमर्श : अनुमन्ता—जिसकी अनुमति के विना उस प्राणी का वध नहीं किया जा सकता, वह क्रयविक्रयी—गोविन्द राज ने इसका अर्थ—'खरीदकर बेचने वाला' किया है। किन्तु 'मारने से हन्ता, धन से खरीदने वाला, धन लेने से वेचने वाला और उसमें प्रवृत्ति करने से संस्कार करने वाला—(घातक होते हैं), इस यम वचन में, खरीदने वाले तथा बेचने वाले'—दोनों को पापभागी लिखा है। यह घातक (हिंसक) त्वदोष शास्त्रोक्त विधि से विरुद्ध हिंसा-विषयक है, शास्त्र के विधि-निषेधोभयपदक होते हैं तथा मांस-भक्षक के लिए अन्यत्र प्रायश्चित्त कहा गया है।"

"यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुरा ऽऽसवम्।
सद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः॥"

—(मनु० ११।९५)

अर्थ : "मद्य, मांस, सुरा और आसव ये चारों यक्ष, राक्षसों तथा पिशाचों के अन्न (भक्ष्य पदार्थ) हैं, अतएव देवताओं के हविष्य खाने वाले ब्राह्मणों को उनका भोजन (पान) नहीं करना चाहिए।"

**"सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामकारान् बिहिंसन्ति वहिर्वेद्यां पशून् नराः ।"**

—(महाभारत, शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५ श्लो० ५)

पं० राम नारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' : धर्मात्मा मनु ने सम्पूर्ण कर्मों में अहिंसा का ही प्रतिपादन किया है । मनुष्य अपनी ही इच्छा से यज्ञ की बाह्य वेदी पर पशुओं का वलिदान करते हैं ।"[११६]

महाभारत से भी यह पुष्टि हो रही है कि मनुस्मृति में 'अहिंसा' की चर्चा है और यज्ञ में पशु-बलिदान भी धर्मशास्त्र के विरुद्ध है ।

अतः मनुस्मृति से मांसाहार सिद्ध करना वृथा प्रयास है ।

क्या 'महाभारत' में 'गोवध' की चर्चा है ?

पृष्ठ ५६ : "……शान्तिपर्व अ० १४१ में आता है कि विश्वामित्र चाण्डाल के घर से मरे हुए कुत्ते का मांस चुरा कर खा गया ।…"

समीक्षा : महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय १४१ मं (आपद्धर्म पर्व में) विश्वामित्र और चाण्डाल से संवाद हुआ है । 'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति' मनु के इस कथन के अनुसार भूख से व्यग्र होकर चाण्डाल के गृह में कुत्ते का मांस चुराने गए थे । जब चाण्डाल के समझाने से ऋषि नहीं माने तो वह चुप हो गया । ऋषि कुत्ते का मांस चुराकर तो लाए पर भक्षण नहीं किया यह श्लोक ६४ से स्पष्ट हो जाता है ।

अंत में उन्होंने यज्ञ किया तो भारी वर्षा हुई और अन्न उत्पन्न हुए । श्लोक ६८ "विश्वामित्रोऽपि भगवांस्तपसा दग्धकिल्बिष । कालेन महता सिद्धिमवाप परमाद्भु-ताम् ।।" अर्थात्—भगवान् विश्वामित्र भी दीर्घकाल तक **निराहार व्रत** एवं तपस्या करके अपने सारे पाप दग्ध कर चुके थे । अतः उन्हें अत्यन्त अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई । श्लोक ६६ से स्पष्ट हो जाता है कि देवों की कृपा से **पवित्र भोजन** प्राप्त करके उसके द्वारा जीवन की रक्षा की ।"

अतः लेखक यह बतलावे कि महाभारत में यह कहाँ लिखा है कि विश्वामित्र जी ने कुत्ते का मांस भक्षण किया था । यह वृथा दोषारोपण मात्र है ।

पृष्ठ ५७—"महाभारत में भीमसेन के लिए मांस के टोकरे लाने का उल्लेख भी स्पष्ट करता है कि वे लोग भोजन में मांस को भी समाविष्ट करते थे (देखें० महाभा० शल्यपर्व अ० ३० श्लोक २३ और ३४) ।

समीक्षा—महाभारत शल्यपर्व के अन्तर्गत गदापर्व के अ० ३० में अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य का सरोवर पर जाकर दुर्योधन से युद्ध करने के लिए बातचीत

---

११६. **"महाभारत (पंचम खण्ड) (शान्तिपर्व) (सचित्र, सरल हिन्दी अनुवाद सहित) (गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित) पृष्ठ ५१०५**

करना है। व्याधों से दुर्योधन का पता पाकर युधिष्ठिर का सेना सहित सरोवर पर जाने का वर्णन है। इसमें भीमसेन द्वारा मांस भक्षण की कहीं चर्चा नहीं है। लेखक को मेरी चुनौती है कि वह मांस भक्षण सम्बन्धी श्लोक प्रस्तुत करे।

वास्तव में दुर्योधन सरोवर में छिप गया था और पाण्डव उसे खोज रहे थे पर पता न चलता था। जिस समय दुर्योधन द्रोणकुमार से वार्तालाप कर रहा था उस समय "तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः। मांसभार परिश्रान्ताः पानीयार्थे यदृच्छया ॥२३॥=वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांस के भार से थके हुए बहुत से व्याध उस स्थान पर पानी पीने के लिए अकस्मात् आ पहुँचे।" (२३)

उन व्याधों ने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्त में होने वाली बातें सुन लीं। और उन्होंने आपस में विचार-विमर्श किया कि यदि हम दुर्योधन का पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। धन के लोभ से वे "एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः। मांसभारानुपादाय प्रययुः शिविरं प्रति (३४)—इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धन की अभिलाषा रखने वाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांस के बोझ उठाकर पाण्डव शिविर की ओर चल दिए (३४)।

भीमसेन के पास जाकर उन्होंने सरोवर के तट जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुनने में आया था, वह सब कह सुनाया (४१) "ततो वृकोदरो राजन् दत्वा तेषां धनं बहु। धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः (४२)=राजन्! तब शत्रुओं को संताप देने वाले भीम ने उन व्याधों को बहुत धन देकर धर्मराज से सारा समाचार कहा।"

न तो इस अध्याय में भीमसेन द्वारा उन मांसों के रखने की और न भक्षण की कहीं चर्चा है। लेखक को दिवास्वप्न हो गया कि पाण्डव मांस खाते हैं। व्याधों का काम है शिकार करना, मांस यत्र-तत्र ले जाना। वे मांसों के साथ जंगल से आ रहे थे और गुप्तचर बनकर धन के लालच से पाण्डवों के शिविर में गए (उस समय अपने शिकार मांस को कहाँ छोड़ देते अतः साथ लेते गए थे। संवाद सुनाकर, धन लेकर वापस चले गए। 'बिल्ली को स्वप्न में जैसे मांस के छिछड़े ही दिखाई देते हैं' उसी प्रकार लेखक मांस शब्द देखकर पाण्डवों पर मांस भक्षण करने का आरोप कर बैठा।

पृष्ठ ५७ : "महाभारत सभापर्व अ० २२ से पता चलता है कि पशुमांस के समान ही उन दिनों नरमांस भी बलि और यज्ञ के लिए प्रयुक्त होता था।…"

समीक्षा : महाभारत, सभापर्व अन्तर्गत जरासंधपर्व अध्याय २२ में जरासंध और श्रीकृष्ण का संवाद और जरासंध की युद्ध के लिए तैयारी आदि की चर्चा है। जरासंध आसुरी प्रकृति का राजा था अतः उसके कुविचार को जानकर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं —

राजा राज्ञः कथं साधून् हंस्यान्नृपतिसत्तम।
तद् राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥ ९॥

अर्थ : नृपश्रेष्ठ ! एक राजा दूसरे श्रेष्ठ राजाओं की हत्या कैसे कर सकता है ? तुम राजाओं को कैद करके उन्हें रुद्र देवता को भेंट चढ़ाना चाहते हो ?

अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथत्वया।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः॥ १०॥

अर्थ : बृहद्रथकुमार ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह पाप हम सब लोगों पर लागू होगा; क्योंकि हम धर्म की रक्षा करने में समर्थ और धर्म का पालन करने वाले हैं।

अध्याय २४ श्लोक ७ से ११ तक से पता लगता है कि भीमसेन द्वारा जरा-संध मारा गया। श्लोक १२ से पता लगता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने उन सभी बन्दी राजाओं को छुड़ा दिया।

अतः 'नरवलि' कहाँ हुई ? किस श्लोक से 'नरवलि' का स्वप्न लेखक को हुआ ?

पृष्ठ ५७ : रंतिदेव नामक महादानी और यज्ञकर्ता की रसोई में मांस भोजन बनता था (महाभारत, शान्तिपर्व अ० २९)। उसके यहाँ नित्य दो हजार गौएँ मारी जाती थीं (महाभारत, वनपर्व अ० २०७ श्लोक ९)। शान्तिपर्व अध्याय २९ श्लोक १२७ से पता चलता है कि एक दिन अतिथियों के लिए इसने २,१००० गौएँ मारीं। इतना ही नहीं, इसने गोमेध यज्ञ में इतनी गौएँ मारीं कि उनके रक्त, मांस और चरबी से एक नदी बह निकली जो 'चर्मण्वती' कहलाई। देखें महाभारत, शांतिपर्व अ० २९, श्लोक १२३, मेघदूत के ४५वें श्लोक की मल्लिनाथ की संस्कृत व्याख्या।······मांस से अधिक भक्ष्य भी कोई नहीं है(महाभारत, अनुशासन पर्व अ० ६, श्लोक ७ से १० तक)।······

समीक्षा : राजा रन्तिदेव द्वारा गौएँ मारने व उनके भोजनशाला में मांस भोजन के वर्णन की बात भ्रमपूर्ण है। महाभारत में ऐसी चर्चा नहीं है। सरिता के लेखक जैसा क्षुद्राशय व्यक्ति उन्हें नहीं समझ सकता । लेखक के दिए हुए प्रमाणों पर विचार।

क्या राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनता था ?

महाभारत शान्तिपर्व अ० २९ में कहीं भी राजा रन्तिदेव की रसोई में मांस भोजन बनने का वर्णन नहीं है। यदि है तो लेखक को श्लोक संख्या देकर अर्थ करना उचित था पर कहीं से सुन सुनाकर लिख दिया है।

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति ससृष्टमणिकुण्डलाः।
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य भोज्यं यथा पुरा।"

—[महाभारत, शान्तिपर्वान्तर्गत राजधर्मानुशासन पर्व, अ० २९ श्लोक १२८]

अर्थ : वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किए रसोइये पुकार-पुकार कर कहते थे कि "आप लोग खूब दाल-भात खाइए। आज का भोजन पहले जैसा नहीं है' अर्थात् पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा है।

यहाँ केवल 'दाल-भात' के बनने की चर्चा है।

गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'महाभारत' वनपर्व अ० २०७ श्लोक ६ में कहीं भी दो सहस्र गौवों के वध की चर्चा नहीं है।

राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वैद्विज।
द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा।
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा।।

यह प्रमाण राजा राजेन्द्रलाल मित्र की अंग्रेजी पुस्तक "Beef in ancient India" (प्राचीन भारत में गोमांस) नामक पुस्तक की भूमिका के पृष्ठ ३ पर अंकित है।

वास्तव में यह श्लोक 'चित्रशाला संस्करण, पूना के' वन पर्व अ० २०८ में और 'भण्डारकर इन्स्टिट्यूट' पूना के संस्करण के वन पर्व अ० १९९ में मिलता है।

सभी संस्करणों में यह श्लोक नहीं है। जिन-जिन संस्करणों में ये श्लोक हैं उनमें आगे की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः।
अतुला कीर्तिरभवन्नृपस्य द्विजसत्तम।

अर्थात्—हे द्विजश्रेष्ठ ! सदा मांस सहित भोजन देने वाले राजा रन्तिदेव की अनुपम कीर्ति हुई।

उपर्युक्त तीनों पंक्तियों का अर्थ 'वध्यते शब्द का 'मारी जाती थीं' लेकर यह माना जाता है कि राजा रन्तिदेव की रसोई में दो सहस्र पशु और दो सहस्र गायें प्रति दिन मारी जाती थीं।

'वध्येते' का शुद्ध अर्थ : संस्कृत व्याकरण में 'वध' धातु स्वतंत्र नहीं है जिसका अर्थ 'मारना' हो सके, बल्कि मारने के अर्थ में 'हन्' धातु का प्रयोग हुआ है। यह बात महाभाष्य (२-४, ४२-४३) के 'उद्योत्' तथा 'ण्वुल्तृचौ' (३, १, १३३) कृदन्त के 'शब्देन्दुशेखर' में स्पष्ट है। इस 'हन्' धातु के स्थान में 'वध' आदेश होता है। पाणिनि २।४।४२,४३ का सूत्र है—'हनीवधलिङ्ि लुङ्ि च।' 'इस सूत्र का अर्थ 'हन्' धातु को 'वध' आदेश होता है 'लिङ् और 'लुङ्' लकारों में। 'लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं—एक विधिलिङ् और दूसरा 'आशिषलिङ्'। दोनों प्रकार के 'लिङ्' में 'वध' आदेश नहीं होता, किन्तु केवल 'आशिषलिङ्' में ही होता है जिसका अर्थ 'आशीर्वाद देना' होता है क्योंकि 'वध' आदेश करने वाले सूत्र के पहले पाणिनि का सूत्र है—"आर्वधातुके (इत्यधिकृत्य)'—इसका अर्थ है कि आर्वधातुक में ही

*जुन १९६७ ई० में मनीषा ग्रन्थालय प्रा० लि०, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।

'हन्' को 'वध' आदेश होता है, सार्वधातुक' में नहीं। इन दो लकारों (अर्थात् आशीर्वाद अर्थ में और भूतकाल अर्थ में) के सिवा और कहीं भी 'हन्' धातु को 'वध' आदेश होता ही नहीं। 'वध्येते' प्रयोग इन दो लकारों का नहीं है। इन दो लकारों में तो 'अवधीत्' और 'वध्यात' बनता है, 'वध्येते' तीन काल में भी नहीं बन सकता, क्योंकि 'वध्येते' यह वर्तमान काल अर्थ वाले 'लट्' लकार का प्रयोग है। इस लकार में 'हन्' धातु को 'वध' आदेश नहीं होता। इसलिए उसके प्रयोग 'हन्यते हन्येते, इत्यादि बनते हैं, जैसा कि 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' (गीता २।२०) यह 'मारने' अर्थ में 'हन्' धातु का प्रयोग है। यदि वर्तमान काल में 'वध' आदेश होता तो 'न वध्यते वध्यमाने शरीरे' —ऐसा होना चाहिए था किन्तु यह सभी मानते हैं कि ऐसा नहीं है। इसलिए महाभारत के रन्तिदेव प्रकरण में आए हुए दोनों श्लोकों के 'वध्येते'—वे प्रयोग 'हिंसा'—अर्थ वाले 'हन्' धातु के प्रयोग नहीं माने जा सकते। स्वतंत्र 'वध' धातु 'हिंसा' अर्थ में संस्कृत व्याकरण में कोई नहीं हैं तब यह 'वध्येते' किस धातु का प्रयोग है। यह निश्चय होता है कि यह प्रयोग हिंसा अर्थ वाले 'हन्' धातु का नहीं है बल्कि बन्धन अर्थ वाले 'वध बन्धने' धातु का है। संस्कृत व्याकरण में 'ब' कार 'व' कार 'र' कार और 'ड' कार और 'ल' कार 'र' कार—इनका अभेद होता है अर्थात् 'व' के स्थान 'ब' और 'व' के स्थान 'ब' का प्रयोग, 'र' के स्थान 'ड' और 'ड' के स्थान 'र' का प्रयोग तथा 'ल' के स्थान 'र' और 'र' के स्थान 'ल' का प्रयोग क्षम्य माना गया है।

महाभारत वनपर्व में वहां धर्म व्याध द्वारा कौशिक ब्राह्मण को धर्म का उपदेश दि। हुए हिंसा और अहिंसा का विवेचन किया गया है। गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण, वनपर्व अ० २०७ श्लोक ७४ में "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश है। इस अध्याय में हिंसा की बुराई और अहिंसा की प्रशंसा की गई हैं। इस विवेचन में कोई भी ऐतिहासिक उदाहरण नहीं दिया गया है।

अतः यह श्लोक निश्चय ही प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

राजा रंतिदेव के यहाँ पशु हिंसा नहीं होती थी—

(क) अनुशासन पर्व के अध्याय ११५ में गीता प्रेस के संस्करण में श्लोक संख्या ६३ से ६७ तक में बहुत से राजाओं के नाम गिनाए हैं जिन्होंने कभी मांस नहीं खाया। उन्हीं में राजा रंतिदेव का भी नाम है।

यदि राजा रन्तिदेव के यह ब्राह्मणों को गोमांस या साधारण पशु का मांस खिलाया जाता होता तो यज्ञावशिष्ट प्रसाद (पशुमांस) राजा रन्तिदेव अवश्य खाते और ऐसा होने पर कभी भी मांस न भक्षण करने वालों की श्रेणी में राजा रन्तिदेव का नाम नहीं गिनाया जाता।

(ख) दो सहस्र गायों का प्रतिदिन वध हो तो एक वर्ष में ७, २०,००० गायें नष्ट हो जायेंगी। प्रतिवर्ष लगातार इतनी गायों का वध हो तो धीरे-धीरे गोवंश ही नष्ट हो जाएगा। अतः यह बात उचित नहीं है।

(ग) यदि 'समांसं ददतो ह्यन्न…' पाठ ही ठीक माना जाय तो भी आगे वर्णित राजा रन्तिदेव की विशेपता को देखते हुए 'मांस' शब्द का अर्थ 'पशु मांस' नहीं हो सकता। शतपथ ब्रा० ११-७-१-३,"एतदु ह वै परमन्नाद्यं यन्मांसन्" 'परमान्न' नाम दूध-चावल के मिश्रण से वनी शक्करयुक्त खीर का है (परमान्नं तु पायसम्) अमरकोष २-७-२४। अतः इसका अर्थ होगा—पायस सहित अन्न भोजन कराने से राजा रन्तिदेव की अतुल कीर्ति हुई, न कि पशु मांस भोजन करने से।

(घ) गीता प्रेस गोरखपुर के संस्करण महाभारत, द्रोणपर्व अ० ६७ श्लोक १४ में

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत्॥ १४
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशति। १४½

संस्कृति पुत्र रन्तिदेव के यहाँ जिस रात में अतिथियों का समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस सहस्र गौएँ छूकर(स्पर्श कर)दान दी जाती थीं।

(ङ) **"अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।**
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽलभेत् तु यः।"

—[महाभारत: शान्ति पर्वान्तिर्गत मोक्षधर्म पर्व, अ० २६२, श्लोक ४७]

अर्थ—श्रुति में गौओं को 'अघ्न्या' (अवध्य) कहा गया है, फिर कौन उन्हें मारने का विचार करेगा? जो पुरुष गाय और बैलों को मारता है वह महान पाप करता है।

उपर्युक्त प्रमाण 'चित्रशाला पूना' संस्करण अ० २६२ श्लोक ४७ और 'भण्डारकर इन्सिटट्यूट' पूना संस्करण, अ० २५४ श्लोक ४५ में है।

ऐसे दानी और मांसभक्षण से घृणा करने वाले महात्मा राजा रन्तिदेव के यहाँ दो सहस्र निर्दोष पशु या गायों का मांस अतिथियों के लिए पकाया जाना संभव व युक्तिसंगत है क्या? कदापि नहीं।

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसत् गृहे।
आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशति।"

—(महाभारत, शान्तिपर्वान्तिर्गत राजधर्मानु शासनपर्व अ० २७ श्लोक १२७)

पं० रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' कृत टीका:—"संस्कृति के पुत्र राजा रन्तिदेव के घर में जिस रात को अतिथियों का समुदाय निवास करता था। उस समय उन्हें बीस हजार एक सौ गौएँ छूकर दी जाती थीं।"[११७]

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी सम्पादक "वैदिक धर्म" अपनी 'महाभारत' की टीका में अर्थ करते हैं:—"महात्मा रन्तिदेव के गृह में जो एक रात्रि

---

११७. वही, पृष्ठ ४४७४.

अतिथियों ने निवास किया था; उसमें इक्कीस सहस्र गौवों से उनका सत्कार किया गया था।"

यहाँ कोई वध की बात नहीं है।

'डुलभष् प्राप्तौ' वा दानार्थ स्पर्श कराई गईं। क्योंकि दान के संकल्प के समय उस वस्तु का हाथ से स्पर्श करना पड़ता है। अथवा गोदुग्ध दुहने के लिए गाय को स्पर्श किया जाता है। उस पर हाथ फेरा जाता है; यही गाय के 'आलम्भ' (स्पर्श) का रहस्य है।

'आलभ् के 'स्पर्श' अर्थ "स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भे (मनु. २।१७८); यजु० २०।४ मंत्र के उव्वटभाष्य में 'यजमानमालभते कोसि; गौतमधर्मसूत्र (१।२।२२) में हरदत्तजी ने—"आलम्भनं—स्पर्शनम्" पारस्कर गृ० सू० (२।२।१६) में उपनयन में माणविक-हृदयालम्भन, 'अथास्य हृदयमालभते' = हृदय देश को स्पर्श करना; गोभिल गृ० सू० (२।७।२३) में "अत ऊर्ध्वम् असमालम्भनम्पद शरात्रात्" में प्रसूता स्त्री का दश दिन तक स्पर्श का निषेध है।

गोभिल गृ० सू० (२।७।२३) पर पं० सत्यव्रतजी सामश्रमी का भास्य—"अत ऊर्ध्वम् नाभिकृन्तनात् परस्तात् आदशरात्रात्'दशरात्रिविशेषं यावत् असमालम्भनम् अस्पर्शनम् कुमारमातुरित्यशौचविधिः"

डा० उदयनारायण सिंहकृत भाषार्थः—नाड़ी छेदन के पीछे दश दिन प्रसूति स्पर्श योग्या न होगी।

अतः रन्तिदेव के 'आलभ्यन्त शतं गावः" का भी दानार्थ वा सत्कारार्थ स्पर्श ही अर्थ अभिप्रेत है।

'चर्मण्वती' नदी का रहस्यः—

उपातिष्ठन्त पशवः स्वयं तं संशितव्रतम्।
ग्राम्यारण्या महात्मानं रन्तिदेवं यशस्विनम् ॥१२२॥
महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजे यतः।
ततश्चर्मण्वतीस्येवं विख्याता सा महानदी ॥१२२॥

—[महाभारत, शान्तिपर्व अ. २७)

पं० रामनारायणदत्त शास्त्रीः—कठोरव्रत का पालन करने वाले, यशस्वी महात्मा राजा रन्तिदेव के पास गाँवों और जंगलों के पशु अपने आप यज्ञ के लिए उपस्थित हो जाते थे ॥१२२॥ वहाँ भीगी चर्मराशि से जो जल बहता था, उससे एक विशाल नदी प्रकट हो गई। जो चर्मण्वती (चम्बल)के नाम से विख्यात हुई॥१२३॥

टिप्पणी—यह श्लोक गीता प्रेस, गोरखपुर, चित्रशाला पूना संस्करण तथा भण्डारकर संस्था पूना के महाभारत, शान्ति पर्व अ० २७ में हैं। श्लोक की क्रम-संख्या में थोड़ा अन्तर है।

राजा रन्तिदेव के यहाँ पशु अपने आप मरने के लिए नहीं आते थे, वरन् स्नेह प्रदान करने और स्नेह लेने के लिए आते थे। गौ आदि पशु यज्ञ के लिए दुग्ध देने को या अन्य सेवा करने को ही आते थे। इससे प्रतीत होता है कि राजा रन्तिदेव उन पशुओं को यज्ञ के समय दान में देते थे। दान में देने के पूर्व उनको जल से स्नान करवा कर, स्वच्छ बनाकर उनका श्रृंगार किया जाता होगा और उस स्नान कराने से उनके चर्म का धोना होता था। २१ सहस्र गौओं के चर्म को धोने से जो जल बहता था उससे नदी बनी जो चर्मण्वती (चम्बल) नाम से विख्यात हुई।

'सरिता' के लालबुझक्कड़ लेखक ने इस रहस्य को न समझ कर उनके रक्त, मांस, चरबी से नदी का वह निकलना माना है जो उसकी मूर्खता ही है। रक्त जम जाता है, नदी के समान नहीं वह सकता। इस बात को भी लेखक नहीं समझता है।

मोनियर विलियम्स के 'संस्कृत अंग्रेजी कोश' में 'चर्मण्वती' के दो अर्थ दिए हैं—एक तो उस नदी का नाम जो बुन्देलखंड के मध्य बहती हुई गंगा में जा मिलती है जिसको आजकल 'चम्बल' नदी कहते हैं; दूसरा अर्थ 'Musa Sapientum='यह वनस्पति शास्त्र (Botany) में सामान्य केले के वृक्ष का पारिभाषिक नाम है। Musa शब्द संस्कृत में 'मोच' शब्द का पर्यायवाची है।

यह भी संभव हो सकता है कि जिस प्रान्त में चर्मण्वती नदी वहा करती थी किसी समय में वहाँ 'Musa Sapientum' कदलीवन रहा हो। इसी से उसका नाम 'चर्मण्वती' पड़ गया हो और वहाँ पर राजा रन्तिदेव द्वारा दान दिए जाने वाली गायें चरा करती हों तथा गोदान में फैली हुई राजा रंतिदेव की कीर्ति में चर्मण्वती नदी का भी उल्लेख आया हो।

डा० सुधीर कुमार गुप्त एम० ए० कृत मेघदूत का शाब्दिक अनुवाद व टिप्पणीः—राजा रन्तिदेव की कीर्ति सम्बन्धी ४७वें श्लोक की टिप्पणी में गुप्त जी लिखते हैं:—"ताण्ड् महाब्राह्मण १७.१३.१. में 'गोसवः क्रतुः' का अर्थ—'अथैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः' किया है। 'रन्तिदेव' का अर्थ—'रन्तिः रमणं देवानां यस्मिन् सः'—जिसमें विद्वान् रुचि लेते हैं: अर्थात् विद्वानों को सुखदायक और उनसे आदृत पुरुष। 'रन्ति' पद यजुर्वेद २२-१७ में इसी अर्थ में आया है (देखिए शतपथ ब्राह्मण १३. १. ६. २)। इस प्रकार देवपूज्य महाराज रन्तिदेव की स्वराज्य रक्षा ही 'सुरभितनयालम्भ' यज्ञ है। इसकी कीर्ति की परिचायिका चर्मण्वती नदी है। उसीके किनारे इन महाराज ने अपनी दान-वीरता, विद्वत्प्रेम, वीर कर्म, प्रजापालन, आदि का परिचय दिया था। 'चर्मण्वती' पद 'चर्मन् + वत् + ई' से बनता है। चर्म का अर्थ है—'चरति गच्छति येन तत् चर्म'। देखिए ऊणादि कोष ४।११५, ऋषि दयानन्द की टीका, अजमेर १८८७ सं० वि। जिससे जाता है—कीर्ति को प्राप्त होता है वह चर्म है। अतः रन्तिदेव की कीर्ति का परिचय देने के कारण यह चर्मण्वती कहलाती है।

इसका इससे अन्य अर्थ भी हो सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३. ७. ७. ५

(प्राणा वै सुरभयः) में 'सुरभयः' का अर्थ 'प्राणाः' किया है। अतः—पुरुषितनयाः (वीरपुरुषा, योधाः इति यावत्) तेषाम् आलम्भः (प्राप्तिः, स्वीकार, ग्रहणम्) तस्मात् जाता. 'जो वीर पुरुषों की महती सेना रखता है' अथवा 'जो महान् योद्धाओं का विजेता है'। इस अर्थ में महाराज रन्तिदेव के अद्‌भुत विक्रम का परिचय मिलता है, जो सर्वथा असंभव नहीं।"

पृष्ठ ५८ "आपने महाभारत, अनुशासन पर्व अ. ११५ श्लोक ५९ व ६०; अ. ६ श्लोक. ७ से १० तक मांस भक्षण का विधान बतलाया है।'

समीक्षा—आपने जिस अनुशासन पर्व के अ० ११५ में मांस खाने का विधान लिखा है उसमें ७६ श्लोक हैं और सभी श्लोकों में मद्य और मांस के भक्षण में महान् दोष, उनके त्याग की महिमा एवं त्याग में परम लाभ का प्रतिपादन बतलाया गया है। अ० ६ श्लोक ७ से १० तक में भी मांस भक्षण का आदेश नहीं है।

आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते।

—(महाभारत, अनुशासन पर्वाणि दान धर्म पर्व, अध्याय ११५ श्लोक ४५)

यह श्लोक मनुस्मृति ५।५१ के आधार पर है।

पं० रामनारायण दत्त शास्त्री:—"जो मनुष्य हत्या के लिए पशु लाता है, जो उसे मारने की अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है। ये सब के सब खाने वाले ही माने जाते हैं अर्थात् वे सब खाने वाले के समान ही पाप के भागी होते हैं।"

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥४॥

—(महाभारत, शान्तिपर्वाणि मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५)

"जो धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, नास्तिक हैं तथा जिन्हें आत्मा के विषय में सन्देह है एवं जिनकी कहीं प्रसिद्धि नहीं है। ऐसे लोगों ने ही हिंसा का समर्थन किया है।"

महाभारत के इस उक्त प्रमाण से 'सरिता' के लेखक श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' मूर्ख, नास्तिक ठहरते हैं क्योंकि इनको सभी ग्रन्थों में हिंसा ही दिखाई दे रहा है।

सुरामत्स्या मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम् ॥९॥

—(महाभारत, शान्तिपर्वाणि, मोक्षधर्मपर्व, अध्याय २६५)

अर्थ—"सुरा, आसव, मधु, मांस और मछली तथा तिल और चावल की खिचड़ी—इन सब वस्तुओं को धूर्तों ने यज्ञ में प्रचलित कर दिया है। वेदों में इनके

उपयोग का विधान नहीं है।

अत: इस प्रमाण से स्पष्ट हो गया कि वेदों में सुरा, आसव, मधु, मांस, मत्स्य का प्रयोग वेदों में नहीं है। लेखक यदि सिद्ध करता है तो महाभारत के अनुसार वह घूर्त है।

इस एक ही प्रमाण ने मांस सिद्ध करने पर पानी फेर दिया है।

लेखक ने आगे 'मार्कण्डेयपुराण', ब्रह्मवैवर्त पुराण, वाममार्ग, तुलसीकृत रामायण से मांस भक्षण सिद्ध करने का प्रयास किया है जो वेद विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हैं। जब वेदों में ही इसका विधान नहीं है तब पुराणों व रामायण से सिद्ध करना व्यर्थ है।

इस प्रकार 'सरिता' में जो वेदादि ग्रन्थों से नरमेध, गोमेध, मांस भक्षण आदि को सिद्ध करने का कुप्रयास किया गया है उन सभी प्रमाणों पर उहापोह से विचार किया गया है।

इत्यलम्।

सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिए
सर्वदा तैयार रहना चाहिए—

मुद्रक : भाटिया प्रेस गांधी नगर, दिल्ली-३१

दयानन्द संस्थान का आकर्षक साहित्य

1. Light of Truth

अंग्रेजी सत्यार्थ प्रकाश—महर्षि दयानन्द के महान् ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का मास्टर दुर्गाप्रसाद कृत यह अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से अनुपम है। छपाई, कागज, जिल्द सभी दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक यह ग्रन्थ लागत मात्र पर दिया जा रहा है। पृष्ठ ५७८। साइज डिमाई आठवाँ।

कपड़े की बढ़िया जिल्द १२)

2. TEACHINGS OF SWAMI DAYANANDA

—मूल्य १.००

महर्षि दयानन्द की विचार धारा और शिक्षाओं से सभी को परिचित कराने के लिए अनुपम पुस्तक।

3. TEN COMMANDMENTS OF THE ARYASAMAJ

Re. 1.00

आर्य समाज के १० नियमों की अभूतपूर्व व्याख्या : स्व० पं० चमूपतिजी की लेखनी से। स्वामी जी के तिरंगे चित्र सहित मूल्य १)

4. MESSAGE OF THE ARYA SAMAJ TO THE UNIVERSE

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालङ्कार लिखित—आर्य समाज का संदेश फैलाने हेतु प्रभावशाली पुस्तिका—जिसका ८ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। —मूल्य ५० पैसे।

5. VEDIC-PRAYER

संध्या, प्रार्थना, मंत्र, हवन, स्वस्तिवाचन, शाँतिप्रकरण, ईशोपनिषद् आदि सभी की पूर्ण व्याख्या हिन्दी अंग्रेजी में एक साथ—और चुने हुए भजन, भेंट के लिए अत्युत्तम मूल्य २) ५०

6. DAYANAND THE GREAT (तीसरा नया संस्करण)

पं० वेद मित्र ठाकुर लिखित प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

7. AN INTRODUCTION TO THE ARYA SAMAJ

(तृतीय संस्करण) आर्य समाज से सभी को परिचित करने के लिए प्रभावशाली ट्रैक्ट मूल्य १५ पैसे

8. THE GREAT GAYTRI मूल्य २० पैसे। १५) सैकड़ा

गायत्री मंत्र का यः सुन्दर अंग्रेजो अनुवाद प्रत्येक दृष्टि से आकर्षक है। ७५) रिम के सर्वश्रेष्ठ कागज पर रंगीन मोहक छपायो

9. THE VEDIC FUNDAMENTALS RS. 2.50

वैदिक धर्म के सिद्धान्त समझने हेतु प्रभावपूर्ण मार्ग दर्शन

10. VEDIC LIFE

वैदिक जीवन पद्धति पर चुने मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य २)५०

11. What is yoga ? योग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन मूल्य—१५ पैसे

12. The man and His Religion

स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखित एक ऐसा ग्रन्थ जो अपूर्व है—मूल्य १)

13. Life of Swami Dayanand D. N. Vasudeva…मूल्य १)

14. Christianity and Vedas

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड लिखित मूल्य १.५०

15. Bible in the Balance चार्ल्स स्मिथ द्वारा लिखित मूल्य १५ पैसे

16. A challenge to the christian faith स्वामी श्रद्धानन्द ५ पैसे

17. Essence of vedic Religion मूल्य 15 पैसे

18. The Fundamentals of the Arya Samaj मूल्य 15 पैसे

वैदिक हिन्दी साहित्य

१. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण **मूल्य ६० पैसे**

केवल हिन्दी में प्रत्येक मंत्र के साथ उनका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, चुने हुए भजन। ८४ पृष्ठ। मूल्य ६० पैसे। ५० रु० सैकड़ा।

२—उपनिषद्—वचनामृत। पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार—मूल्य ४०पैसे

उपनिषदों का सार पुस्तक में प्रभावशाली ढंग से अंकित हैं।

३—धर्मग्रन्थावलोकन—संसार के प्रमुख धर्म ग्रन्थों का प्रामाणिक परिचय अनुपम ग्रंथ-प्रिंसीपल रत्नचन्द शर्मा एम. ए. लिखित —**मूल्य १) ५०**

४—गीत मंजरी—नया तीसरा बड़ा संस्करण **मूल्य १)४०। १००)सैकड़ा**

ईश्वर भक्ति के गीत और प्रभु से प्रार्थना करते हुए यदि आप सचमुच अपने आपको भुलाना चाहते हैं तो 'गीत-मंजरी" का सहारा लीजिए।

५—ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द जी द्वारा लिखित अनमोल रचना **—मूल्य ८० पैसे**

६—मोक्ष का वैदिक मार्ग आचार्य वैद्यनाथ-योगिराज पथिक का अनुपम मार्गदर्शन **—मूल्य ५० पैसे**

या "वेद" आपके घर में है ?

यदि नहीं

तो

आज ही ८०) भेजकर

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

चार जिल्दों में

अपने परिवार में लाकर

परम पिता परमात्मा का

आशीर्वाद प्राप्त कीजिए !

धर्म की पुकार सुनो !

अपने घर में वेद लाओ !

धरती को स्वर्ग बनाओ !

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग,
नई दिल्ली-५

श्रावण=संवत् २०३०
जुलायी १६७३

रजिस्टर्ड नं०
D—1631

वेद-प्रचार सप्ताह आ रहा है,
श्रावणी का पर्व आ रहा है।
भूलिए नहीं
१३ अगस्त १९७३ से पूर्व
आपने
वेद-भाष्य-प्रकाशन-यज्ञ
की सफलता के लिए
अधिक से अधिक आहुति
भेजनी है
कोई भी वेदानुयायी ऐसा न रहे
जिसकी आहुति १३ अगस्त तक
श्रद्धा से न पहुंचे
आपका सहयोग ही
वेद को घर-घर पहुँचा सकेगा

— राकेशरानी
व्यवस्थापक

दयानन्द संस्थान [पंजीकृत न्यास]
नई दिल्ली-५

सम्पादक श्रीमती पं० राकेश रानी के लिये सैनि प्रिण्टर्स दिल्ली-६ में मुद्रित